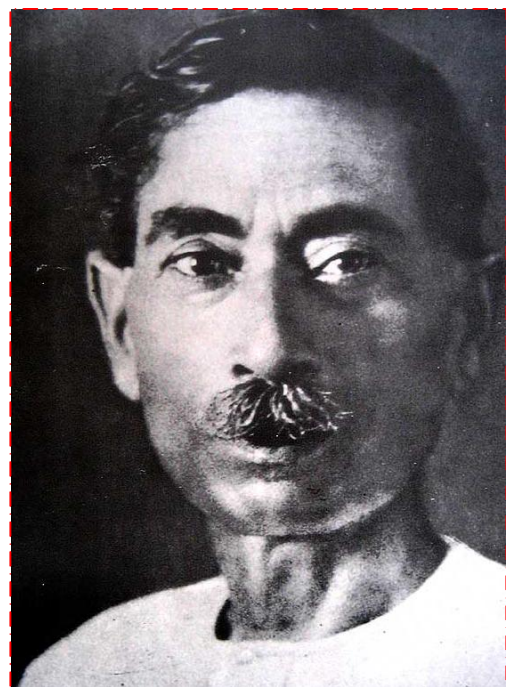


मुंशी प्रेमचंद

की कुछ लघुकथाएँ

From the effort of Books.jakhira.com we are giving you some
short stories of Munshi Premchand Read and Enjoy



शादी की वजह	:	3
मोटेराम जी शास्त्री	:	7
पर्वत-यात्रा	:	14
कवच	:	31
दूसरी शादी	:	44
सौत	:	47

शादी की वजह

यह सवाल टेढ़ा है कि लोग शादी क्यों करते हैं? औरत और मर्द को प्रकृत्या एक-दूसरे की जरूरत होती है लेकिन मौजूदा हालत में आम तौर पर शादी की यह सच्ची वजह नहीं होती बल्कि शादी सभ्य जीवन की एक रस्म-सी हो गई है। बहरलहाल, मैंने अक्सर शादीशुदा लोगों से इस बारे में पूछा तो लोगों ने इतनी तरह के जवाब दिए कि मैं दंग रह गया। उन जवाबों को पाठकों के मनोरंजन के लिए नीचे लिखा जाता है—

एक साहब का तो बयान है कि मेरी शादी बिल्कुल कमसिनी में हुई और उसकी जिम्मेदारी पूरी तरह मेरे मां-बाप पर है। दूसरे साहब को अपनी खूबसूरती पर बड़ा नाज है। उनका ख्याल है कि उनकी शादी उनके सुन्दर रूप की बदौलत हुई। तीसरे साहब फरमाते हैं कि मेरे पड़ोस में एक मुंशी साहब रहते थे जिनके एक ही लड़की थी। मैंने सहानुभूतिवश खुद ही बातचीत करके शादी कर ली। एक साहब को अपने उत्तराधिकारी के रूप में एक लड़के की जरूरत थी। चुनांचे आपने इसी धुन में शादी कर ली। मगर बदकिस्मती से अब तक उनकी सात लड़कियां हो चुकी हैं और लड़के का कहीं पता नहीं। आप कहते हैं कि मेरा ख्याल है कि यह शरारत मेरी बीवी की है जो मुझे इस तरह कुढ़ाना चाहती है। एक साहब पड़े पैसे वाले हैं और उनको अपनी दौलत खर्च करने का कोई तरीका ही मालूम न था इसलिए उन्होंने अपनी शादी कर ली। एक और साहब कहते हैं कि मेरे आत्मीय और स्वजन हर वक्त मुझे घेरे रहा करते थे इसलिए मैंने शादी कर ली। और इसका नतीजा यह हुआ कि अब मुझे शान्ति है। अब मेरे यहां कोई नहीं आता। एक साहब तमाम उम्र दूसरों की शादी-ब्याह पर व्यवहार और भेट देते-देते परेशान हो गए तो आपने उनकी वापसी की गरज से आखिरकार खुद अपनी शादी कर ली।

और साहबों से जो मैंने दर्याफ्त किया तो उन्होंने निम्नलिखित कारण बतलाये। यह जवाब उन्हीं के शब्दों में नम्बरवार नीचे दर्ज किए जाते हैं—

१—मेरे ससुर एक दौलत मन्द आदमी थे और उनकी यह इकलौती बेटी थी इसलिए मेरे पिता ने शादी की।

२—मेरे बाप-दादा सभी शादी करते चले आए हैं इसलिए मुझे भी शादी करनी पड़ी।

३—मैं हमेशा से खामोश और कम बोलने वाला रहा हूँ, इनकार न कर सका।

४—मेरे ससुर ने शुरू में अपने धन-दौलत का बहुत प्रदर्शन किया इसलिए मेरे मां-बाप ने फौरन मेरी शादी मंजूर कर ली।

५—नौकर अच्छे नहीं मिलते थे और अगर मिलते भी थे तो ठहरते नहीं थे। खास तौर पर खाना पकानेवाला अच्छा नहीं मिलता। शादी के बाद इस मुसीबत से छुटकारा मिल गया।

६—मैं अपना जीवन-बीमा कराना चाहता था और खानापूरी के वास्ते विधवा का नाम लिखना जरूरी था।

७—मेरी शादी जिद में हुई। मेरे ससुर शादी के लिए रजामन्द न होते थे मगर मेरे पिता को जिद हो गई। इसलिए मेरी शादी हुई। आखिरकार मेरे ससुर को मेरी शादी करनी ही पड़ी।

८—मेरे ससुरालवाले बड़े ऊँचे खानदान के हैं इसलिए मेरे माता-पिता ने कोशिश करके मेरी शादी की।

९—मेरी शिक्षा की कोई उचित व्यवस्था न थी इसलिए मुझे शादी करनी पड़ी।

१०—मेरे और मेरी बीवी के जनम के पहले ही हम दोनों के मां-बाप शादी की बातचीत पक्की हो गई थी।

११—लोगों के आग्रह से पिता ने शादी कर दी।

१२—नस्ल और खानदान चलाने के लिए शादी की।

१३—मेरी मां को देहान्त हो गया था और कोई घर को देखनेवाला न था इसलिए मजबूरन शादी करनी पड़ी।

- १४—मेरी बहने अकेली थी, इस वास्ते शादी कर ली।
- १५—मैं अकेला था, दफ्तर जाते वक्त मकान में ताला लगाना पड़ता था इसलिए शादी कर ली।
- १६—मेरी मां ने कसम दिलाई थी इसलिए शादी की।
- १७—मेरी पहली बीवी की औलाद को परवरिश की जरूरत थी, इसलिए शादी की।
- १८—मेरी मां का ख्याल था कि वह जल्द मरने वाली है और मेरी शादी अपने ही सामने कर देना चाहती थी, इसलिए मेरी शादी हो गई। लेकिन शादीको दस साल हो रहे हैं भगवान की दया से मां के आशीष की छाया अभी तक कायम है।
- १९—तलाक देने को जी चाहता था इसलिए शादी की।
- २०—मैं मरीज रहता हूँ और कोई तीमारदार नहीं है इसलिए मैंने शादी कर ली।
- २१—केवल संयाग स मेरा विवाह हो गया।
- २२—जिस साल मेरी शादी हुई उस साल बहुत बड़ी सहालग थी। सबकी शादी होती थी, मेरी भी हो गई।
- २३—बिला शादी के कोई अपना हाल पूछने वाला न था।
- २४—मैंने शादी नहीं की है, एक आफत मोल ले ली है।
- २५—पैसे वाले चचा की अवज्ञा न कर सका।
- २६—मैं बुढ़ा होने लगा था, अगर अब न करता तो कब करता।
- २७—लोक हित के ख्याल से शादी की।
- २८—पड़ोसी बुरा समझते थे इसलिए निकाह कर लिया।
- २९—डाक्टरों ने शादी के लिए मजबूर किया।
- ३०—मेरी कविताओं को कोई दाद न देता था।
- ३१—मेरी दांत गिरने लगे थे और बाल सफेद हो गए थे इसलिए शादी कर ली।

३२—फौज मे शादीशुदा लोगों को तनख्वाह ज्यादा मिलतीथी इसलिए मैंने भी शादी कर ली।

३३—कोई मेरा गुस्सा बर्दाश्त न करता था इसलिए मैंने शादी कर ली।

३४—बीवी से ज्यादा कोई अपना समर्थक नहीं होता इसलिए मैंने शादी कर ली।

३५—मैं खुद हैरान हूँ कि शादी क्यों की।

३६—शादी भाग्य मे लिखीथी इसलिए कर ली।

इसी तरह जितने मुंह उतनी बातें सुनने मे आयी।

—‘जमाना’ मार्च, १९२७

मोटेराम जी शास्त्री

पण्डित मोटेरा जी शास्त्री को कौन नहीं जानता! आप अधिकारियों का रुख देखकर काम करते हैं। स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में अपने उस आन्दोलन का खूब विरोध किया था। स्वराज्य आन्दोलन के दिनों में भी अपने अधिकारियों से राजभक्ति की सनद हासिल की थी। मगर जब इतनी उछल-कूद पर उनकी तकदीर की मीठी नींद न टूटी, और अध्यापन कार्य से पिण्ड न छूटा, तो अन्त में अपनी एक नई तदबीर सोची। घर जाकर धर्मपत्नी जी से बोले—इन बूढ़े तोतों को रटाते-रटाते मेरी खोपड़ी पच्ची हुई जाती है। इतने दिनों विद्या-दान देने का क्याफल मिला जो और आगे कुछ मिलने की आशा करूं।

धर्मपत्नी ने चिन्तित होकर कहा—भोजनों का भी तो कोई सहारा चाहिए।

मोटेराम—तुम्हें जब देखो, पेट ही की फ्रिक पड़ी रहती है। कोई ऐसा विरला ही दिन जाता होगा कि निमन्त्रण न मिलते हो, और चाहे कोई निन्दा करें, पर मैं परोसा लिये बिना नहीं आता हूं। आज ही सब यजमान मरे जाते हैं? मगर जन्म-भर पेट ही जिलया तो क्या किया। संसार का कुछ सुख भी तो भोगन चाहिए। मैंने वैद्य बनने का निश्चय किया है।

स्त्री ने आश्चर्य से कहा—वैद्य बनोगे, कुछ वैद्यकी पढ़ी भी है?

मोटे—वैद्यक पढ़ने से कुछ नहीं होता, संसार में विद्या का इतना महत्व नहीं जितना बुद्धि का। दो-चार सीधे-सादे लटके हैं, बस और कुछ नहीं। आज ही अपने नाम के आगे भिष्णाचार्य बढ़ा लूंगा, कौन पूछने आता है, तुम भिष्णाचार्य हो या नहीं। किसी को क्या गरज पड़ी है जो मेरी परीक्षा लेता फिरे। एक मोटा-सा साइनबोर्ड बनवा लूंगा। उस पर शब्द लिखें होंगे—यहा स्त्री पुरुषों के गुप्त रोगों की चिकित्सा विशेष रूप से की जाती है। दो-चार पैसे का हड़-बहेड़ा-आवंला कुट छानकर रख लूंगा। बस, इस काम के लिए

इतना सामान पर्याप्त है। हां, समाचारपत्रों में विज्ञापन दूंगा और नोटिस बंटवाऊंगा। उसमें लंका, मद्रास, रंगून, कराची आदि दूरस्थ स्थानों के सज्जनों की चिट्ठियां दर्ज की जाएंगी। ये मेरे चिकित्सा-कौशल के साक्षी होंगे जनता को क्या पड़ी है कि वह इस बात का पता लगाती फिरे कि उन स्थानों में इन नामों के मनुष्य रहते भी हैं, या नहीं फिर देखों वैद्य की कैसी चलती है।

स्त्री—लेकिन बिना जाने-बूझ दवा दोगे, तो फायदा क्या करेगी?

मोटे—फायदा न करेगी, मेरी बला से। वैद्य का काम दवा देना है, वह मृत्यु को परस्त करने का ठेका नहीं लेता, और फिर जितने आदमी बीमार पड़ते हैं, सभी तो नहीं मर जाते। मेरा यह कहना है कि जिन्हें कोई औषधि नहीं दी जाती, वे विकार शान्त हो जाने पर ही अच्छे हो जाते हैं। वैद्यों को बिना मांगे यश मिलता है। पाच रोगियों में एक भी अच्छा हो गया, तो उसका यश मुझे अवश्य ही मिलेगा। शेष चार जो मर गये, वे मेरी निन्दा करने थोड़े ही आवेंगे। मैंने बहुत विचार करके देख लिया, इससे अच्छा कोई काम नहीं है। लेख लिखना मुझे आता ही है, कवित्त बना ही लेता हूं, पत्रों में आयुर्वेद-महत्त्व पर दो-चार लेख लिख दूंगा, उनमें जहां-तहां दो-चार कवित्त भी जोड़ दूंगा और लिखूंगा भी जरा चटपटी भाषा में। फिर देखों कितने उल्लू फसते हैं यह न समझो कि मैं इतने दिनों केवल बूढ़े तोते ही रटाता रहा हूं। मैं नगर के सफल वैद्यों की चालों का अवलोकन करता रहा हूँ और इतने दिनों के बाद मुझे उनकी सफलता के मूल-मंत्र का ज्ञान हुआ है। ईश्वर ने चाहा तो एक दिन तुम सिर से पांच तक सोने से लदी होगी।

स्त्री ने अपने मनोल्लास को दबाते हुए कहा—मैं इस उम्र में भला क्या गहने पहनूंगी, न अब वह अभिलाषा ही है, पर यह तो बताओं कि तुम्हें दवाएं बनानी भी तो नहीं आती, कैसे बनाओगे, रस कैसे बनेंगे, दवाओं को पहचानते भी तो नहीं हो।

मोटे—प्रिये! तुम वास्तव में बड़ी मूर्ख हो। अरे वैद्यों के लिए इन बातों में से एक भी आवश्यकता नहीं, वैद्य की चुटकी की राख ही रस है, भस्म है,

रसायन है, बस आवश्यकता है कुछ ठाट-बाट की। एक बड़ा-सा कमरा चाहिए उसमें एक दरी हो, ताखों पर दस-पांच शीशीयां बोतल हो। इसके सिवा और कोई चीज दरकार नहीं, और सब कुछ बुद्धि आप ही आप कर लेती है। मेरे साहित्य-मिश्रित लेखों का बड़ा प्रभाव पड़ेगा, तुम देख लेना। अलंकारो का मुझे कितना ज्ञान है, यह तो तुम जानती ही हो। आज इस भूमण्डल पर मुझे ऐसा कोई नहीं दिखता जो अलंकारो के विषय में मुझसे पेश पा सके। आखिर इतने दिनों घास तो नहीं खोदी है! दस-पांच आदमी तो कवि-चर्चा के नाते ही मेरे यहां आया जाया करेंगे। बस, वही मेरे दल्लाह होंगे। उन्हीं की मार्फत मेरे पास रोगी आवेंगे। मैं आयुर्वेद-ज्ञान के बल पर नहीं नायिका-ज्ञान के बल पर धड़ल्ले से वैद्यक करूंगा, तुम देखती तो जाओ।

स्त्री ने अविश्वास के भाव से कहा—मुझे तो डर लगता है कि कहीं यह विद्यार्थी भी तुम्हारे हाथ से न जाए। न इधर के रहो न उधर के। तुम्हारे भाग्य में तो लड़के पढ़ाना लिखा है, और चारों ओर से ठोकर खाकर फिर तुम्हें वी तोते रटाने पड़ेंगे।

मोटे—तुम्हें मेरी योग्यता पर विश्वास क्यों नहीं आता?

स्त्री—इसलिए कि तुम वहां भी धूर्तता करोगे। मैं तुम्हारी धूर्तता से चिढ़ती हूं। तुम जो कुछ नहीं हो और नहीं हो सकते, वक क्यो बनना चाहते हो? तुम लीडर न बन सके, न बन सके, सिर पटककर रह गये। तुम्हारी धूर्तता ही फलीभूत होती है और इसी से मुझे चिढ़ है। मैं चाहती हूं कि तुम भले आदमी बनकर रहो। निष्कपट जीवन व्यतीत करो। मगर तुम मेरी बात कब सुनते हो?

मोटे—आखिर मेरा नायिका-ज्ञान कब काम आवेगा?

स्त्री—किसी रईस की मुसाहिबी क्यो नहीं कर लेते? जहां दो-चार सुन्दर कवित्त सुना दोगें। वह खुश हो जाएगा और कुछ न कुछ दे ही मारेगा। वैद्यक का ढोंग क्यों रचते हों!

मोटे—मुझे ऐसे-ऐसे गुरु मालूम हैं जो वैद्यो के बाप-दादों को भी न मालूम होंगे। और सभी वैद्य एक-एक, दो-दो रुपये पर मारे-मारे फिरते हैं, मैं

अपनी फीस पांच रुपये रक्खूंगा, उस पर सवारी का किराया अलग। लोग यही समझेंगे कि यह कोई बड़े वैद्य है नहीं तो इतनी फीस क्यों होती?

स्त्री को अबकी कुछ विश्वास आया बोली—इतनी देर में तुमने एक बात मतलब की कही है। मगर यह समझ लो, यहां तुम्हारा रंग न जमेगा, किसी दूसरे शहर को चलना पड़ेगा।

मोटे—(हंसकर) क्या मैं इतना भी नहीं जानता। लखनऊ में अड्डा जमेगा अपना। साल-भर में वह धाक बांध दू कि सारे वैद्य गर्द हो जाएं। मुझे और भी कितने ही मन्त्र आते हैं। मैं रोगी को दो-तीन बार देखे बिना उसकी चिकित्सा ही न करूंगा। कहूंगा, मैं जब तक रोगी की प्रकृति को भली भांति पहचान न लूं, उसकी दवा नहीं कर सकता। बोलो, कैसी रहेगी?

स्त्री की बांछे खिल गई, बोली—अब मैं तुम्हें मान गई, अवश्य चलेगी तुम्हारी वैद्यकी, अब मुझे कोई संदेह नहीं रहा। मगर गरीबों के साथ यह मंत्र न चलाना नहीं तो धोखा खाओगे।

2

साल भर गुजर गया।

भिक्षाचार्य पण्डित मोटेराम जी शास्त्री की लखनऊ में घूम मच गई। अलंकारों का ज्ञान तो उन्हें था ही, कुछ गा-बजा भी लेते थे। उस पर गुप्त रोगों के विशेषज्ञ, रसिकों के भाग्य जागें। पण्डित जी उन्हें कवित सुनाते, हंसाते, और बलकारक औषधियां खिलाते, और वह रईसों में, जिन्हें पुष्टिकारक औषधियों की विशेष चाह रहती है, उनकी तारीफों के पुल बांधते। साल ही भर में वैद्यजी का वह रंग जमा, कि बायद व शायद गुप्त रोगों के चिकित्सक लखनऊ में एकमात्र वही थे। गुप्त रूप से चिकित्सा भी करते। विलासिनी विधवारानियों और शौकीन अदूरदर्शी रईसों में आपकी खूब पूजा होने लगी। किसी को अपने सामने समझते ही न थे।

मगर स्त्री उन्हें बराबर समझाया करती कि रानियों के झमेले में न फसों, नही क दिन पछताओगे।

मगर भावी तो होकर ही रहती है, कोई लाख समझाये-बुझाये। पण्डितजी के उपासको में बिड़हल की रानी भी थी। राजा साहब का स्वर्गवास हो चुका था, रानी साहिबा न जाने किस जीर्ण रोग से ग्रस्त थी। पण्डितजी उनके यहां दिन में पांच-पांच बार जाते। रानी साहिबा उन्हें एक क्षण के लिए भी देर हो जाती तो बेचैन हो जाती, एक मोटर नित्य उनके द्वार पर खड़ी रहती थी। अब पण्डित जी ने खूब केचुल बदली थी। तंजेब की अचकन पहनते, बनारसी साफा बाधते और पम्प जूता डाटते थे। मित्रगण भी उनके साथ मोटर पर बैठकर दनदनाया करते थे। कई मित्रों को रानी साहिबा के दरबार में नौकर रखा दिया। रानी साहिबा भला अपने मसीहा की बात कैसी टालती।

मगर चर्खे जफाकार और ही षययन्त्र रच रहा था।

एक दिन पण्डितजी रानी साहिबा की गोरी-गोरी कलाई पर एक हाथ रखे नब्ज देख रहे थे, और दूसरे हाथ से उनके हृदय की गति की परीक्षा कर रहे थे कि इतने में कई आदमी सौटें लिए हुए कमरे में घुस आये और पण्डितजी पर टूट पड़े। रानी भागकर दूसरे कमरे की शरण ली और किवाड़ बन्द कर लिए। पण्डितजी पर बेभाव पड़ने लगे। यों तो पण्डितजी भी दमखम के आदमी थे, एक गुप्ती संदेव साथ रखते थे। पर जब धोखे में कई आदमियों ने धर दबाया तो क्या करते? कभी इसका पैकर पकड़ते कभी उसका। हाय-हाय! का शब्द मुंह से निकल रहा था पर उन बेरहमों को उन पर जरा भी दया न आती थी, एक आदम ने एक लात जमाकर कहा—इस दुष्ट की नाक काट लो।

दूसरा बोला—इसके मुंह में कलिख और चूना लगाकर छोड़ दो।

तीसरा—क्यों वैद्यजी महाराज, बोलो क्या मंजूर है? नाक कटवाओगे या मुंह में कालिख लगवाओगे?

पण्डित—भूलकर भी नही सरकार। हाय मर गया!

दूसरा—आज ही लखनऊ से रफरैट हो जाओं नहीं तो बुरा होगा।

पण्डित—सरकार मैं आज ही चला जाऊंगा। जनेऊ की शपथ खाकर कहता हूं। आप यहां मेरी सूरत न देखें।

तीसरा—अच्छा भाई, सब कोई इसे पांच-पांच लाते लगाकर छोड़ दो।

पण्डित—अरे सरकार, मर जाऊंगा, दया करो

चौथा—तुम जैसे पाखंडियों का मर जाना ही अच्छा है। हां तो शुरू हो।

पंचलती पड़ने लगी, धमाधम की आवाजें आने लगी। मालूम होता था नगाड़े पर चोट पड़ रही है। हर धमाके के बाद एक बार हाय की आवाज निकल आती थी, मानों उसकी प्रतिध्वनी हो।

पंचलती पूजा समाप्त हो जाने पर लोगों ने मोटेराम जी को घसीटकर बाहर निकाला और मोटर पर बैठाकर घर भेज दिया, चलते-चलते चेतावनी दे दी, कि प्रातःकाल से पहले भाग खड़े होना, नहीं तो और ही इलाज किया जाएगा।

३

मोटेराम जी लंगड़ाते, कराहते, लकड़ी टेकते घर में गए और धम से गिर पड़े चारपाई पर गिर पड़े। स्त्री ने घबराकर पूछा—कैसा जी है? अरे तुम्हारा क्या हाल है? हाय-हाय यह तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया!

मोटे—हाय भगवान, मर गया।

स्त्री—कहां दर्द है? इसी मारे कहती थी, बहुत रबड़ी न खाओ। लवणभास्कर ले आऊं?

मोटे—हाय, दुष्टों ने मार डाला। उसी चाण्डालिनी के कारण मेरी दुर्गति हुई। मारते-मारते सबों ने भुरकुस निकाल दिया।

स्त्री—तो यह कहो कि पिटकर आये हो। हां, पिटें हो। अच्छा हुआ। हो तुम लातो ही के देवता। कहती थी कि रानी के यहां मत आया-जाया करो। मगर तुम कब सुनते थे।

मोटे—हाय, हाय! रांड, तुझे भी इसी दम कोसने की सूझी। मेरा तो बुरा हाल है और तू कोस रही है। किसी से कह दे, ठेला-वेला लावे, रातों-रात लखनऊ से भाग जाना है। नहीं तो सबेरे प्राण न बचेगें।

स्त्री—नहीं, अभी तुम्हारा पेट नहीं भरा। अभी कुछ दिन और यहां की हवा खाओ! कैसे मजे से लड़के पढात थे, हां नहीं तो वैद्य बनने की सूझी। बहुत अच्छा हुआ, अब उम्र भर न भूलोगे। रानी कहाँ थी कि तुम पिटते रहे और उसने तुम्हारी रक्षा न की।

पण्डित—हाय, हाय वह चुडैल तो भाग गई। उसी के कारण । क्या जानता था कि यह हाल होगा, नहीं तो उसकी चिकित्सा ही क्यों करता?

स्त्री—हो तुम तकदीर के खोटे। कैसी वैद्यकी चल गई थी। मगर तुम्हारी करतूतों ने सत्यनाश मार दिया। आखिर फिर वही पढौनी करना पड़ी। हो तकदीर के खोटे।

प्रातःकाल मोटेराम जी के द्वार पर ठेला खड़ा था और उस पर असबाब लद रहा था। मित्रों में एक भी नजर न आता था। पण्डित जी पड़े कराह रहे थे और स्त्री सामान लदवा रही थी।

—‘माधुरी’ जनवरी, १९२८

पर्वत यात्रा

प्रातःकाल मुं. गुलाबाजखां ने नमाज पढ़ी, कपड़े पहने और महरी से किराये की गाड़ी लाने को कहा। शीरी बेगम ने पूछा—आज सबेरे-सबेरे कहां जाने का इरादा है?

गुल—जरा छोटे साहब को सलाम करने जाना है।

शीरी—तो पैदल क्यों नहीं चले जाते? कौन बड़ी दूर है।

गुल—जो बात तुम्हारी समझ में न आये, उसमें जबान न खोला करो।

शीरी—पूछती तो हूं पैदल चले जाने में क्या हरज है? गाड़ीवाला एक रूपये से कम न लेगा।

गुल—(हंसकर) हुक्काम किराया नहीं देते। उसकी हिम्मत है कि मुझसे किराया मांगे! चालान करवा दूं।

शीरी—तुम तो हाकिम भी नहीं हो, तुम्हें वह क्यों ले जाने लगा!

गुल—हाकिम कैसे नहीं हूं? हाकिम के क्या सींग-पूंछ होती है, जो मेरे नहीं है? हाकिम को दोस्त हाकिम से कम रोब नहीं रखता। अहमक नहीं हूं कि सौ काम छोड़कर हुक्काम की सलामी बजाया करती हूं। यही इसी की बरकत है कि पुलिस माल दीवानी के अहलकार मुझे झुक-झुककर सलाम करते हैं, थानेदार ने कल जो सौगात भेजी थी, वह किसलिए? मैं उनका दामाद तो नहीं हूं। सब मुझसे डरते हैं।

इतनेमें महरी एक तांगा लाई। खां साहब नेफौरन साफा बांधा और चले। शीरी ने कहा—अरे, तो पान तो खाते जाओ!

गुल—हां, लाओं हाथ में मेहदी भी लगा दो। अरी नेकबख्त, हुक्काम के सामने पान खाकर जाना बेअदबी है।

शीरी—आओगे कब तक? खाना तोयही खाओगें!

गुल—तुम मेरे खाने की फ्रिक न करना, शायद कुअरसाहब के यहां चला जाऊ। कोई मुझे पूछे तो कहला देना, बड़े साहब से मिलने गये हैं।

खां साहब आकर तांगे पर बैठे। तांगेवाले ने पूछा—हुजूर, कहाँ चलूँ?

गुल—छोटे साहब के बंगले पर। सरकारी काम से जाना है।

तांगे—हुजूर को वहाँ कितनी देर लगेगी?

गुल—यह मैं कैसे बता दूँ, यह तो हो नहीं सकता कि साहब मुझसे बार-बार बैठने को कहे और मैं उठकर चला आऊँ। सरकारी काम है, न जाने कितनी देर लगे। बड़े अच्छे आदमी हैं बचारे। मजाल नहीं कि जो बात कह दूँ, उससे इनकार कर दे। आदमी को गरूर न करना चाहिए। गरूर करना शैतान का काम है। मगर कई थानेदारों से जवाब तलब कर चुका हूँ। जिसको देखा कि रिआया को ईजा पहुँचाता है, उसके पीछे पड़ जाता हूँ।

तांगे—हुजूर पुलिस बड़ा अधेर करती है। जब देखो बेगार कभी आधी रात को बुला भेजा, कभी फजिर को। मरे जाते हैं हुजूर। उस पर हर मोड़ पर सिपाहियों को पैसे चाहिए। न दे, तो झूठा चालान कर दें।

गुल—सब जानता हूँ जी, अपनी झोपड़ी में बैठा सारी दुनिया की सेर किया करता हूँ। वही बैठे-बैठे बदमाशों की खबर लिया करता हूँ। देखो, तांगे को बंगले के भीतर न लेजाना। बाहर फाटक पर रोक देना।

तांगे—अच्छा हुजूर। अच्छा, अब देखिये वह सिपाह मोड़ पर खड़ा है। पैसे के लिए हाथ फैलायेगा। न दूँ तो ललकारेगा। मगर आज कसम कुरान की, टका-सा जवाब दे दूँगा। हुजूर बैठे हैं तो क्या कर सकता है।

गुल—नहीं, नहीं, जरा-जरा सी बात पर मैं इन छोटे आदमियों से नहीं लड़ता। पैसे दे देना। मैं तो पीछे से बचा की खबर लूँगा। मुअत्तल न करा दूँ तो सही। दूबदू गाली-गलौजकरना, इन छोटे आदमियों के मुँह लगना मेरी आदत नहीं।

तांगेवाले को भी यह बात पसन्द आई। मोड़ पर उसने सिपाही को पैसे दे दिए। तांगा साहब के बंगले पर पहुँचा। खां साहब उतरे, और जिस तरह कोई शिकारी पैर दबा-दबाकर चौकन्नी आंखों से देखता हुआ चलता है, उसी तरह आप बंगले के बरामदे में जाकर खड़े हो गए। बैरा बरामदे में बैठा था। आपने उसे देखते ही सलाम किया।

बैरा—हुजूर तो अंधेर करते हैं। सलाम हमको करना चाहिए और आप पहले ही हाथ उठा देते हैं।

गुल—अजी इन बातों में क्या रक्खा है। खुदा की निगाह में सब इन्सान बराबर हैं।

बैरा—हुजूर को अल्लाह सलामत रखें, क्या बात कही है। हक तो यह है पर आदमी अपने को कितना भूल जाता है! यहां तो छोटे-छोटे अमले भी इंतजार करते रहते हैं कि यह हाथ उठावें। साहब को इतला कर दूं?

गुल—आराम में हो तो रहने दो, अभी ऐसी कोई जल्दी नहीं।

बैरा—जी नहीं हुजूर हाजिरी पर से तो कभी के उठ चुके, कागज-वागज पढ़ते होंगे।

गुल—अब इसका तुम्हें अख्तियार है, जैसा मौका हो वैसा करो। मौका-महल पहचानना तुम्हीं लोगो का काम है। क्या हुआ, तुम्हारी लड़की तो खैरियत से है न?

बैरा—हां हुजूर, अब बहुत मजे में है। जब से हुजूर ने उसके घरवालों को बुलाकर डांट दिया है, तब से किसी ने चूं भी नहीं किया। लड़की हुजूर की जान-माल को दुआ देती है।

बैरे ने साहब कोखां साहब की इतला की, और एक क्षण में खां साहब जूते उतार कर साहब के सामने जा खड़े हुए और सलाम करके फर्श पर बैठ गए। साहब का नाम काटन था।

काटन—ओ!ओ! यह आप क्या करता है, कुर्सी पर बैठिए, कुर्सी पर बैठिए।

काटन—नहीं, नहीं आप हमारा दोस्त हैं।

खां—हुजूर चाहे मेरे कोआफताब बना दें, पर मैं तो अपनी हकीकत समझता हूं। बंदा उन लोगों में नहीं है जो हुजूर के करम से चार हरफ पढ़कर जमीन पर पावं नहीं रखते और हुजूर लोगों की बराबरी करने लगते हैं।

काटन—खां साहब आप बहुत अच्छे आदमी हैं। हम आत के पांचवे दिन नैनीताल जा रहा है। वहां से लौटकर आपसे मुलाकात करेगा। आप तो कई बार नैनीताल गया होगा। अब तो सब रईस लोग वहां जाता है।

खां साहब नैनीताल क्या, बरेली तक भी न गये थे, पर इस समय कैसे कह देते कि मैं वहां कभी नहीं गया। साहब की नजरों से गिर न जाते! साहब समझते कि यह रईस नहीं, कोई चरकटा है। बोले—हां हुजूर कई बार हो आया हूं।

काटन—आप कई बार हो आया है? हम तो पहली दफा जाता है। सुना बहुत अच्छा शहर है।?

खां—बहुत बड़ा शहर है हुजूर, मगर कुछ ऐसा बड़ा भी नहीं है।

काटन—आप कहां ठहरता? वहां होटलो में तो बहुत पैसा लगता है।

खां—मेरी हुजूर न पूछें, कभी कहीं ठहर गया, कभी कहीं ठहर गया। हुजूर के अकबाल से सभी जगह दोस्त है।

काटन—आप वहां किसी के नाम चिट्ठी दे सकता है कि मेरे ठहरने का बंदोबस्त कर दें। हम किफायत से काम करना चाहता है। आप तो हर साल जाता है, हमारे साथ क्यों नहीं चलता।

खां साहब बड़ी मुश्किल में फंसे। अब बचाव का कोई उपाय न था। कहना पड़ा—जैसा हुजूर के साथ ही चला चलूंगा। मगर मुझे अभी जरा देर है हुजूर।

काटन—ओ कुछ परवाह नहीं, हम आपके लिए एक हफ्ता ठहर सकता है। अच्छा सलाम। आज ही आप अपने दोस्त को जगह का इन्तजाम करने को लिख दें। आज के सातवें दिन हम और आप साथ चलेगा। हम आपको रेलवे स्टेशन पर मिलेगा।

खां साहब ने सलाम किया, और बाहर निकले। तांगे वाले से कहा—कुंअर शमशेर सिंह की कोठी पर चलो।

कुंअर शमशेर सिंह .खानदानी रईस थे। उन्हें अभी तक अंग्रेजी रहन-सहन की कवा न लगी थी। दस बजे दिन तक सोना, फिर दोस्तों और मुसाहिबों के साथ गपशप करना, दो बजे खाना खाकर फिर सोना, शाम को चौक की हवा खाना और घर आकर बारह-एक बजे तक किसी परी का मुजरा देखना, यही उनकी दिनचर्या थी। दुनिया में क्या होता है, इसकी उन्हें कुछ खबर न होती थी। या हुई भी तो सुनी-सुनाई। खां साहब उनके दोस्तों में थे।

जिस वक्त खां साहब कोठी में पहुंचे दस बजठ गये थे, कुंअर साहब बाहर निकल आये थे, मित्रगण जमा थे। खां साहब को देखते ही कुंअर साहब ने पूछा—कहिए खां, साहब, किधर से?

खां साहब—जरा साहब से मिलने गया था। कई दिन बुला-बुला भेजा, मगर फुर्सत ही न मिलती थीं। आज उनका आदमी जबर्जस्ती खींच ले गया। क्या करता, जाना ही पड़ा। कहां तक बेरुखी करूं।

कुंअर—यार, तुम न जाने अफसरों पर क्या जादू कर देते हो कि जो आता है तुम्हारा दम भरने लगता है। मुझे वह मन्त्र क्यों नहीं सिखा देते।

खां—मुझे खुद ही नहीं मालूम कि क्यों हुक्काम मुझ पर इतने मेहरबान रहते हैं। आपको यकीन न आवेगा, मेरी आवाज सुनते ही कमरे के दरवाजे पर आकर खड़े हो गये और ले जाकर अपनी खास कुर्सी पर बैठा दिया।

कुंअर—अपनी खास कुर्सी पर?

खां—हां साहब, हैरत में आ गया, मगर बैठना ही पड़ा। फिर सिगार मंगवाया, इलाइच, मेवे, चाय सभी कुछ आ गए। यों कहिए कि खासी दावत हो गई। यह मेहमानदारी देखकर मैं दंग रह गया।

कुंअर—तो वह सब दोस्ती भी करना जानते हैं।

खां—अजी दूसरा क्या खां के दोस्ती करेगा। अब हद हो गई कि मुझे अपने साथ नैनीताल चलने को मजबूर किया।

कुंअर—सच!

खां—कसम कुरान की। हैरान था कि क्या जबाब दूँ। मगर जब देखा कि किसी तरह नहीं मानते, तो वादा करना ही पड़ा। आज ही के दिन कूच है।

कुंअर—क्यों यार, मैं भी चला चलूँ तो क्या हरज हैं?

खां—सुभानअल्लाह, इससे बढ़कर क्या बात होगी।

कुंअर—भई, लोग, तरह-तरह की बातें करते हैं, इससे जाते डर लगता है। आप तो हो आये होंगे?

खां—कई बार हो आया हूँ। हां, इधर कई साल से नहीं गया।

कुंअर—क्यों साहब, पहाड़ों पर चढ़ते-चढ़ते दम फूल जाता होगा?

राधाकान्त व्यास बोले—धर्मावतार, चढ़ने को तो किसी तरह चढ़ भी जाइए पर पहाड़ों का पानी ऐसा खराब होता है कि एक बार लग गया तो प्राण ही लेकर छोड़ता है। बदरीनाथ की यात्रा करने जितने यात्री जाते हैं, उनमें बहुत कम जीते लौटते हैं और संग्रहणी तो प्रायः सभी को ही जाती है।

कुंअर—हां, सूना तो हमने भी है कि पहाड़ों का पानी बहुत लगता है।

लाला सुखदयाल ने हामी भरी—गोसाई जी ने भी तो पहाड़ के पानी की निन्दा की है—

लागत अति पहाड़ का पानी।

बड़ दुख होत न जाई बखानी॥

खां—तो यह इतने अंग्रेज वहां क्यों जाते हैं साहब? ये लोग अपने वक्त के लुकमान हैं। इनका कोई काम मसलहत से खाली नहीं होता? पहाड़ों की सैर से कोई फायदा न होता तो क्यों जातें, जरा यह तो साचिए।

व्यास—यही सोच-सोचकर तो हमारे रईस अपना सर्वनाश कर रहे हैं। उनकी देखी-देखी धन का नाश, धर्म का नाश, बल का नाश होता चला जाता है, फिर भी हमारी आंखें नहीं खूलतीं।

लाला—मेरे पिता जी एक बार किसी अंग्रेज के साथ पहाड़ पर गये। वहां से लौटे तो मुझे नसीहत की कि खबरदार, कभी पहाड़ पर न जाना। आखिर कोई बात देखी होगी, जमी तो यह नसीहत की।

वाजिद—हुजूर, खां साहब जाते हैं जाने दीजिए, आपको मैं जाने की सलाह न दूंगा। जरा सोचिए, कोसों की चढ़ाई, फिर रास्ता इतना खतरनाक कि खुदा की पनाह! जरा-सी पगड़ड़ी और दोनों तरफ कोसों का खड्ड। नीचे देखा ओर थरथरा कर आदमी गिर पड़ा और जो कहीं पत्थरों में आग लग गई, तो चलिए वारा-न्यारा हो गया। जल-भुन के कबाब हो गये।

खां—और जो लाखों आदमी पहाड़ पर रहते हैं?

वाजिद—उनकी ओर बात है भाई साहब।

खां—और बात कैसी? क्या वे आदमी नहीं हैं?

वाजिद—लाखों आदमी दिन-भर हल जोतते हैं, फावड़े चलाते हैं, लकड़ी फाड़ते हैं, आप करेंगे? है आपमें इतनी दम? हुजूर उस चढ़ाई पर चढ़ सकते हैं?

खां—क्यों नहीं टट्टुओं पर जाएंगे।

वाजिद—टट्टुओं पर छःकोस की चढ़ाई! होश की दवा कीजिए।

कुंअर—टट्टुओं पर! मई हमसे न जाया जायगा। कहीं टट्टू भड़के तो कहीं के न रहे।

लाला—गिरे तो हड्डियां तक न मिले!

व्यास—प्राण तक चूर-चूर हो जाय।

वाजिद—खुदाबंद, एक जरा—सी ऊंचाई पर से आदमी देखता हैं, तो कांपने लगता है, न कि पहाड़ की चढ़ाई।

कुंआर—वहां सड़कों पर इधर-उधर ईंट या पत्थर की मुंडेर नहीं बनी हुई हैं?

वाजिद—खुदाबंद, मंजिलों के रास्तों में मुंडेर कैसी!

कुंअर—आदमी का काम तो नहीं है।

लाला—सुना वहां घेघा निकल आता है।

कुंअर—अरे भई यह बुरा रोग है। तब मैं वहां जाने का नाम भी न लूंगा।

खां—आप लाल साहब से पूछें कि साहब लोग जो वहां रहते हैं, उनको घेघा क्यों नहीं हो जाता?

लाला—वह लोग ब्रांडी पीते हैं। हम और आप उनकी बराबरी कर सकते हैं भला। फिर उनका अकबाल!

वाजिद—मुझे तो यकीन नहीं आता कि खां साहब कभी नैनीताल गये हों। इस वक्त डींग मार रहे हैं। क्यों साहब, आप कितने दिन वहां रहे?

खां—कोई चार बरस तक रहा था।

वाजिद—आप वहां किस मुहल्ले में रहते थे?

खां—(गड़बड़ा कर) जी—मैं।

वाजिद—अखिर आप चार बरस कहां रहे?

खां—देखिए याद आ जाय तो कहूं।

वाजिद—जाइए भी। नैनीताल की सूरत तक तो देखी नहीं, गप हांक दी कि वहां चार बरस तक रहे!

खां—अच्छा साहब, आप ही का कहना सही। मैं कभी नैनीताल नहीं गया। बस, अब तो आप खुश हुए।

कुंअर—आखिर आप क्यों नहीं बताते कि नैनीताल में आप कहां ठहरे थे।

वाजिद—कभी गए हों, तब न बताएं।

खां—कह तो दिया कि मैं नहीं गया, चलिये छुट्टी हुई। अब आप फरमाइए कुंअर साहब, आपको चलना है या नहीं? ये लोग जो कहते हैं सब ठीक है। वहां घेघा निकल आता है, वहां का पानी इतना खराब है कि .खाना बिल्कुल नहीं हजम होता, वहां हर रोज दस-पांच आदमी खड्ड में गिरा करते हैं। अब आप क्या फैसला करते हैं? वहां जो मजे हैं वह यहां ख्वाब में भी नहीं मिल सकते। जिन हुक्काम के दरवाजे पर घंटों खड़े रहने पर भी मुलाकात नहीं होती, उनसे वहां चौबीसों घंटों खड़े रहने पर भी मुलाकात नहीं

होती। उनसे वहां चौबीसों घंटों का साथ रहेगा। मिसों के साथ झील में सैर करने का मजा अगर मिल सकता है तो वहीं। अजी सैकड़ों अंग्रेजों से दोस्ती हो जाएगी। तीन महीने वहां रहकर आप इतना नाम हासिल कर सकते हैं जितना यहां जिन्दगी-भर भी न होगा। वस, और क्या कहूं।

कुंअर—वहां बड़े-बड़े अंग्रेजों से मुलाकात हो जाएगी?

खां—जनाब, दावतों के मारे आपको दम मारने की मोहलत न मिलेगी।

कुंअर—जी तो चाहता है कि एक बार देख ही आए।

खां—तो बस तैयारी कीजिए।

सभाजन ने जब देखा कि कुंअर साहब नैनीताल जाने के लिए तैयार हो गए तो सब के सब हां में हां मिलाने लगे।

व्यास—पर्वत-कंदराओं में कभी-कभी योगियों के दर्शन हो जाते हैं।

लाला—हां साहब, सुना है—दो-दो सौ साल के योगी वहां मिलते हैं।

जिसकी ओरह एक बार आंख उठाकर देख लिया, उसे चारों पदार्थ मिल गये।

वाजिद—मगर हुजूर चलें, तो इस ठाठ से चलें कि वहां के लोग भी कहें कि लखनऊ के कोई रईस आये है।

लाला—लक्ष्मी हथिनी को जरूर ले चलिए। वहां कभी किसी ने हाथी की सूरत काहे को देखी होगी। जब सरकार सवार होकर निकलेंगे और गंगा-जमुनी हौदा चमकेगा तो लोग दंग हो जाएंगे।

व्यास—एक डंका भी हो, तो क्या पूछना।

कुंअर—नहीं साहब, मेरी सलाह डंके की नहीं है। देश देखकर भेष बनाना चाहिए।

लाला—हां, डंके की सलाह तो मेरी भी नहीं है। पर हाथी के गले में घंटा जरूर हो।

खां—जब तक वहां किसी दोस्त को तार दे दीजिए कि एक पूरा बंगला ठीक कर रखे। छोटे साहब को भी उसी में ठहरा लेंगे।

कुंअर—वह हमारे साथ क्यों ठहरने लगे। अफसर है।

खां—उनको लाने का जिम्मा हमारा। खींच-खींचकर किसी न किसी तरह ले ही आऊंगा।

कुंअर—अगर उनके साथ ठहरने का मौका मिले, तब तो मैं समझूँ नैनीताल का जाना पारस हो गया।

3

एक हफ्ता गुजर गया। सफर की तैयारियां हो गईं। प्रातःकाल काटन साहब का खत आया कि आप हमारे यहां आएं या मुझसे स्टेशन पर मिलेंगे। कुंअर साहब ने जवाब लिखवाया कि आप इधर ही आ जाइएगा। स्टेशन का रास्ता इसी तरफ से है। मैं तैयार रहूंगा। यह खत लिखवा कर कुंअर साहब अन्दर गए तो देखा कि उनकी बड़ी साली रामेश्वरी देवी बैठी हुई है। उन्हें देखकर बोली—क्या आप सचमुच नैनीताल जा रहे हैं?

कुंअर—जी हां, आज रात की तैयारी है।

रामेश्वरी—अरे! आज ही रात को! यह नहीं हो सकता। कल बच्चा का मुंडन है। मैं एक न मानूंगी। आप ही न होंगे तो लोग आकर क्या करेंगे।

कुंअर—तो आपने पहले ही क्यों न कहला दिया, पहले से मालूम होता तो मैं कल जाने का इरादा ही क्यों करता।

रामेश्वरी—तो इसमें लाचारी की कौन-सी बात है, कल न सही दो-चार दिन बाद सही।

कुंअर साहब की पत्नी सुशीला देवी बोली—हां, और क्या, दो-चार दिन बाद ही जाना, क्या साइट टली है?

कुंअर—आह! छोटे साहब से वादा कर चुका हूं, वह रात ही को मुझे लेने आएंगे। आखिर वह अपने दिल में क्या कहेंगे?

रामेश्वरी—ऐसे-ऐसे वादे हुआ ही करते हैं। छोटे साहब के हाथ कुछ बिक तो गये नहीं हो।

कुंअर—मैं क्या कहूं कि कितना मजबूर हूं! बहुत लज्जित होना पड़ेगा।

रामेश्वरी—तो गया जो कुछ है वह छोटे साहब ही हैं, मैं कुछ नहीं!

कुंअर—आखिर साहब से क्या कहूं, कौन बहाना करूं?

रामेश्वरी—कह दो कि हमारे भतीजे का मुंडन हैं, हम एक सप्ताह तक नहीं चल सकते। बस, छुट्टी हुई।

कुंअर—(हंसकर) कितना आसान कर दिया है आपने इस समस्या को ऐसा हो सकता है कहीं। कहीं मुंह दिखाने लायक न रहूंगा।

सुशीला—क्यों, हो सकने को क्या हुआ? तुम उसके गुलाम तो नहीं हो?

कुंअर—तुम लोग बाहर तो निकलती-पैठती नहीं हो, तुम्हें क्या मालूम कि अंग्रेजों के विचार कैसे होते हैं।

रामेश्वरी—अरे भगवान्! आखिर उसके कोई लड़का-बाला है, या निगोड़ नाठा है। त्योहार और व्योहार हिन्दू-मुसलमान सबके यहां होते हैं।

कुंअर—भई हमसे कुछ करते-धरते नहीं बनता।

रामेश्वरी—हमने कह दिया, हम जाने नहीं देगे। अगर तुम चले गये तो मुझे बड़ा रंज होगा। तुम्हीं लोगों से तो महफिल की शोभा होगी और अपना कौन बैठा हुआ है।

कुंअर—अब तो साहब को लिख भेजने का भी मौका नहीं है। वह दफ्तर चले गये होंगे। मेरा सब असबाब बंध चुका है। नौकरों को पेशगी रूपया दे चुका कि चलने की तैयारी करें। अब कैसे रुक सकता हूँ!

रामेश्वरी—कुछ भी हो, जाने न पाओगे।

सुशीला—दो-चार दिन बाद जाने में ऐसी कौन-सी बड़ी हानि हुई जाती है? वहां कौन लड़ू धरे हुए है?

कुंअर साहब बड़े धर्म-संकट में पड़े, अगर नहीं जाते तो छोटे साहब से झूठे पड़ते हैं। वह अपने दिल में कहेंगे कि अच्छे बेहुदे आदमी के साथ पाला पड़ा। अगर जाते हैं तो स्त्री से बिगाड़ होती है, साली मुंह फुलाती है। इसी चक्कर में पड़े हुए बाहर आये तो मियां वाजिद बोले—हुजूर इस वक्त कुछ उदास मालूम होते हैं।

व्यास—मुद्रा तेजहीन हो गई है।
कुंअर—भई, कुछ न पूछो, बड़े सकंट में हूं।
वाजिद—क्या हुआ हुजूर, कुछ फरमाइए तो?
कुंअर—यह भी एक विचित्र ही देश है।
व्यास—धर्मावतार, प्राचीन काल से यह ऋषियों की तपोभूमि है।
लाला—क्या कहना है, संसार में ऐसा देश दूसरा नहीं।
कुंअर—जी हां, आप जैसे गौखे और किस देश में होंगे। बुद्धि तो हम लोगों को भी छू नहीं गई।
वाजिद—हुजूर, अक्ल के पीछे तो हम लोग लट्ठ लिए फिरते हैं।
व्यास—धर्मावतार, कुछ कहते नहीं बनता। बड़ी हीन दशा है।
कुंअर—नैनीताल जाने को तैयार था। अब बड़ी साली कहती है कि मेरे बच्चे का मुंडन है, मैं न जाने दूंगी। चले जाओंगे तो मुझे रंज होगा। बतलाइए, अब क्या करूं। ऐसी मूर्खता और कहां देखने में आएगी। पूछो मुंडन नाई करेगा, नाच-तमाशा देखने वालों की शहर में कमी नहीं, एक में न हूंगा न सही, मगर उनको कौन समझाये।
व्यास—दीनबन्धु, नारी-हठ तो लोक प्रसिद्ध ही है।
कुंअर—अब यह सोचिए कि छोटे साहब से क्या बहाना किया जायगा।
वाजिद—बड़ा नाजुक मुआमला आ पड़ा हुजूर।
लाला—हाकिम का नाराज हो जाना बुरा है।
वाजिद—हाकिम मिट्टी का भी हो, फिर भी हाकिम ही है।
कुंअर—मैं तो बड़ी मुसीबत में फंस गया।
लाला—हुजूर, अब बाहर न बैठे। मेरी तो यही सलाह है। जो कुछ सिर पर पड़ेगी, हम ओढ़ लेंगे।
वाजिद—अजी, पसीने की जगह खून गिरा देंगे। नमक खाया है कि दिल्लगी है।
लाला—हां, मुझे भी यही मुनासिब मालूम होता है। आप लोग कह दीजिए, बीमार हो गए हैं।

अभी यही बातें हो रही थी कि खिदमतगार ने आकर हांफते हुए कहा—सरकार, कोऊ आया है, तौन सरकार का बुलावत है।

कुंअर—कौन है पूछा नहीं?

खिद.—कोऊ रंगरेज है सरकार, लाला-लाल मुंह हैं, घोड़ा पर सवार है।

कुंअर—कहीं छोटे साहब तो नहीं हैं, भई में तो भीतर जाता हूं। अब आबरू तुम्हारे हाथ है।

कुंअर साहब ने तो भीतर घुसकर दरवाजा बन्द कर लिया। वाजिदअली ने खिड़की से झांकर देखा, तो छोटे साहब खड़े थे। हाथ-पांव फूल गये। अब साहब के सामने कौन जाय? किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। एक दूसरे को ठेल रहा है।

लाला—बढ़ जाओ वाजिदअली। देखो क्या कहते हैं?

वाजिद—आप ही क्यों नहीं चले जाते?

लाला—आदमी ही तो वह भी हैं, कुछ खा तो न जाएगा।

वाजिद—तो चले क्यों नहीं जाते।

काटन साहब दो-तीन मिनट खड़े रहे। अब यहाँ से कोई न निकला तो बिगड़कर बोले—यहां कौन आदमी है? कुंअर साहब से बोलो, काटन साहब खड़ा है।

मियां वाजिद बौखलाये हुए आगे बढ़े और हाथ बांधकर बोले—खुदावंद, कुंअर साहब ने आज बहुत देर से खाना खाया, तो तबियत कुछ भारी हो गई है। इस वक्त आराम में हैं, बाहर नहीं आ सकते।

काटन—ओह! तुम यह क्या बोलता है? वह तो हमारे साथ नैनीताल जाने वाला था। उसने हमको खत लिखा था।

वाजिद—हां, हुजूर, जाने वाले तो थे, पर बीमार हो गये।

काटन—बहुत रंज हुआ।

वाजिद—हुजूर, इतफाक है।

काटन—हमको बहुत अफसोस है। कुंअर साहब से जाकर बोलो, हम उनको देखना मांगता है।

वाजिद—हुजूर, बाहर नहीं आ सकते।

काटन—कुछ परवाह नहीं, हम अन्दर जाकर देखेंगा।

कुंअर साहब दरवाजे से चिमटे हुए काटन साहब की बातें सुन रहे थे। नीचे की सांस नीचे थी, ऊपर की ऊपर। काटन साहब को घोड़े से उतरकर दरवाजे की तरफ आते देखा, तो गिरते-पड़ते दौड़े और सुशीला से बोले—दुष्ट मुझे देखने घर में आ रहा है। मैं चारपाई पर ले जाता हूँ, चटपट लिहाफ निकलवाओं और मुझे ओढ़ा दो। दस-पांच शीशियां लाकर इस गोलमेज पर रखवा दो।

इतने में वाजिदअली ने द्वार खटखटाकर कहा—महरी, दरवाजा खोल दो, साहब बहादुर कुंअर साहब को देखना चाहते हैं। सुशीला ने लिहाफ मांगा, पर गर्मी के दिन थे, जोड़े के कपड़े सन्दूकों में बन्द पड़े थे। चटपट सन्दूक खोलकर दो-तीन मोटे-मोटे लिहाफ लाकर कुंअर साहब को ओढ़ा दिये। फिर आलमारी से कई शीशियां और कई बोतल निकालकर मेज पर चुन दिये और महरी से कहा—जाकर किवाड़ खोल दो, मैं ऊपर चली जाती हूँ।

काटन साहब ज्यों ही कमरे में पहुंचे, कुंअर साहब ने लिहाफ से मुंह निकला लिया और कराहते हुए बोले—बड़ा कष्ट है हुजूर। सारा शरीर फुंका जाता है।

काटन—आप दोपहर तक तो अच्छा था, खां साहब हमसे कहता था कि आप तैयार हैं, कहां दरद है?

कुंअर—हुजूर पेट में बहुत दर्द है। बस, यही मालूम होता है कि दम निकल जायेगा।

काटन—हम जाकर सिविल सर्जन को भेज देता है। वह पेट का दर्द अभी अच्छा कर देगा। आप घबरायें नहीं, सिविल सर्जन हमारा दोस्त है।

काटन चला गया तो कुंअर साहब फिर बाहर आ बैठे। रोजा बख्शाने गये थे, नमाज गले पड़ी। अब यह फिक्र पैदा हुई कि सिविल सर्जन को कैसे टाला जाय।

कुंअर—भई, यह तो नई बला गले पड़ी।

वाजिद—कोई जाकर खां साहब को बुला लाओ। कहना, अभी चलिए ऐसा न हो कि वह देर करें और सिविल सर्जन यहां सिर पर सवार हो जाय।

लाला—सिविल सर्जन की फीस भी बहुत होगी?

कुंअर—अजी तुम्हें फीस की पड़ी है, यहां जान आफत में है। अगर सौ दो सौ देकर गला छूट जाय तो अपने को भाग्यवान समझूं।

वाजिदअली ने फिटन तैयार कराई और खां साहब के घर पहुंचें देखा ते वह असबाब बंधवा रहे थे। उनसे सारा किस्सा बयान किया और कहा—अभी चलिए। आपको बुलाया है।

खां—मामला बहुत टेढ़ा है। बड़ी दौड़-धूप करनी पड़ेगी। कसम खुदा की, तुम सबके सब गर्दन मार देने के लायक हो। जरा-सी देर के लिए मैं टल क्या गया कि सारा खेल ही बिगाड़ दिया।

वाजिद—खां साहब, हमसे तो उड़िए नहीं। कुंअर साहब बौखलाये हुए हैं। दो-चार सौ का वारा-न्यारा है। चलकर सिविल सर्जन को मना कर दीजिए।

खां—चलो, शायद कोई तरकीब सूझ जाये।

दोनों आदमी सिविल सर्जन की तरफ चले। वहां मालूम हुआ कि साहब कुंअर साहब के मकान पर गये हैं। फौरन फिटन घुमा दी, और कुंअर साहब की कोठी पर पहुंचे। देखा तो सर्जन साहब एनेमा लिये हुए कुंअर साहब की चारपाई के सामने बैठे हुए हैं।

खाँ—मैं तो हुजूर के बंगले से चला आ रहा हूँ। कुअर साहब का क्या हाल है?

डाक्टर—पेट में दर्द है। अभी पिचकारी लगाने से अच्छा हो जायेगा।

कुंअर—हुजूर, अब दर्द बिल्कुल नहीं है। मुझे कभी-कभी यह मर्ज हो जाता है और आप ही आप अच्छा हो जाता है।

डाक्टर—ओ, आप डरता है। डरने की कोई बात नहीं है। आप एक मिनट में अच्छा हो जाएगा।

कुंअर—हुजूर, मैं बिल्कुल अच्छा हूँ। अब कोई शिकायत नहीं है।

डाक्टर—डरने की कोई बात नहीं, यह सब आदमी यहां से हट जाय, हम एक मिनट में अच्छा कर देगा।

खां साहब ने डाक्टर से काम में कहा—हुजूर अपनी रात की डबल फीस और गाड़ी का किराया लेकर चले जाएं, इन रईसों के फेर में न पड़ें, यह लोग बारहों महीने इसी तरह बीमार रहते हैं। एक हफ्ते तक आकर देख लिया कीजिए।

डाक्टर साहब की समझ में यह बात आ गई। कल फिर आने का वादा करके चले गये। लोगों के सिर से बला टली। खां साहब की कारगुजारी की तारीफ होने लगी!

कुंअर—खां साहब आप बड़े वक्त पर काम आये। जिन्दगी-भर आपका एहसान मानूंगा।

खां—जनाब, दो सौ चटाने पड़े। कहता था छोटे साहब का हुक्म हैं। मैं बिला पिचकारी लगाये न जाऊंगा। अंग्रेजों का हाल तो आप जानते हैं। बात के पक्के होते हैं।

कुंअर—यह भी कह दिया न कि छोटे साहब को मेरी बीमारी की इतला कर दें और कह दें, वह सफर करने लायक नहीं है।

खां—हां साहब, और रुपये दिये किसलिए, क्या मेरा कोई रिश्तेदार था? मगर छोटे साहब को होगी बड़ी तकलीफ। बेचारे ने आपको बंगले के आसरे पर होटल का इन्तजाम भी न किया था। मामला बेढब हुआ।

कुंअर—तो भई, मैं क्या करता, आप ही सोचिए।

खां—यह चाल उल्टी पड़ी। जिस वक्त काटन साहब यहां आये थे, आपको उनसे मिलना चाहिए था। साफ कह देते, आज एक सख्त जरूरत से रुकना पड़ा। लेकिन खैर, मैं साहब के साथ रहूंगा, कोई न कोई इंतजाम हो ही जायगा।

कुंअर— क्या अभी आप जाने का इरादा कर ही रहे हैं! हलफ से कहता हूं, मैं आपको न जाने दूंगा, यहां न जाने कैसी पड़ें, मियां वाजिद देखों, आपको घर कहला दो, बारह न जायेंगे।

खां—आप अपने साथ मुझे भी डुबाना चाहते हैं। छोटे साहब आपसे नाराज भी हो जाएं तो क्या कर लेंगे।, लेकिन मुझसे नाराज हो गये, तो खराब ही कर डालेंगे।

कुंअर—जब तक हम जिन्दा हैं भाई साहब, आपको कोई तिरछी नजर से नहीं देख सकता। जाकर छोटे साहब से कहिए, कुंअर साहब की हालत अच्छी नहीं, मैं अब नहीं जा सकता। इसमें मेरी तरफ से भी उनका दिल साफ हो जाएगा और आपकी दोस्ती देखकर आपकी और इज्जत करने लगेगा।

खां—अब वह इज्जत करें या न करें, जब आप इतना इसरार कर रहे हैं तो मैं भी इतना बे-मुरौवत नहीं हूँ कि आपको छोड़कर चला जाऊँ। यह तो हो ही नहीं सकता। जरा देर के लिए घर चला गया, उसका तो इतना तावान देना पड़ा नैनीताल चला जाऊँ तो शायद कोई आपको उठा ही ले जाय।

कुंअर—मजे से दो-चार दिन जल्से देखेंगे, नैनीताल में यह मजे कहाँ मिलते। व्यास जी, अब तो यों नहीं बैठा जाता। देखिए, आपके भण्डार में कुछ हैं, दो-चार बोटलें निकालिए, कुछ रंग जमे।*

—‘माधुरी’, अप्रैल, १९२९

* रतननाथ सरशर-कृत ‘सैरे कोहसार’ के आधार पर।

कवच

बहुत दिनों की बात है, मैं एक बड़ी रियासत का एक विश्वस्त अधिकारी था। जैसी मेरी आदत है, मैं रियासत की घड़ेबन्दियों से पृथक रहता न इधर, अपने काम से काम रखता। काजी की तरह शहर के अंदर से दुबला न होता था। महल में आये दिन नये-नये शिगूफे खिलते रहते थे, नये-नये तमाशे होते रहते थे, नये-नये षड़यंत्रों की रचना होती रहती थी, पर मुझे किसी पक्ष से सरोकार न था। किसी की बात मैं दखल न देता था, न किसी की शिकायत करता, न किसी की तारीफ। शायद इसीलिए राजा साहब की मुझ पर कृपा-दृष्टि रहती थी। राजा साहब शीलवान्, दयालु, निर्भीक, उदार और कुछ स्वेच्छाचारी थे। रेजीडेण्ट की खुशामद करना उन्हें पसन्द न था। जिन समाचार पत्रों से दूसरी रियासतें भयभीत रहती थीं और और अपने इलाके में उन्हें आने न देती थीं, वे सब हमारी रियासत में बेरोक-टोक आते थे। एक-दो बार रेजीडेण्ट ने इस बारे में कुछ इशारा भी किया था, लेकिन राजा साहब ने इसकी बिल्कुल परवाह न की। अपने आंतरिक शासन में वह किसी प्रकार का हस्ताक्षेप न चाहते थे, इसीलिए रेजीडेण्ट भी उनसे मन ही मन द्वेष करता था।

लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि राजा साहब प्रजावत्सल, दूरदर्शी, नीतिकुशल या मितव्ययी शासक थे। यह बात न थी। वे बड़े ही विलासप्रिय, रसिक और दुर्व्यसनी थे। उनका अधिकांश समय विषय-वासना की ही भेंट होता था। रनवास में दर्जनों रानियां थी, फिर भी आये दिन नई-नई चिड़ियां आती रहती थी। इस मद में लेशमात्र भी किफायत या कंजूसी न की जाती थी। सौन्दर्य की उपासना उनका गौण स्वभाव-सा हो गया था। इसके लिए वह दीन और ईमान तक की हत्या करने को तैयार रहते थे। वे स्वच्छन्द करना चाहते थे, और चूंकि सरकार उन्हें बंधनों में डालना चाहती थी, वे उन्हें चिढ़ाने के लिए ऐसे मामलों में असाधारण अनुराग और उत्साह दिखाते

थे, जिनमें उन्हें प्रजा की सहायता और सहानुभूति का पूरा विश्वास होता था, इसलिए प्रजा उनके दुर्गुणों को भी सदगुण समझती थी, और अखबार वाले भी सदैव उनकी निर्भीकता और प्रजा-प्रेम के राग अलापते रहते थे।

इधर कुछ दिनों से एक पंजाबी औरत रनवास में दाखिल हुई थी। उसके विषय में तरह-तरह की अफवाहें फैली हुई थीं। कोई कहता था, मामूली, बेश्या है, कोई ऐक्ट्रेस बतलाता था, कोई भले घर की लड़की। न वह बहुत रूपवती थी, न बहुत तरदार, फिर भी राजा साहब उस पर दिलोजान से फिदा थे। राजकाज में उन्हें यों ही बहूत प्रेम न था, मगर अब तो वे उसी के हाथों बिक गये थे, वही उनके रोम-रोम में व्याप्त हो गई थी। उसके लिए एक नया राज-प्रसाद बन रहा था। नित नये-नये उपहार आते रहते थे। भवन की सजावट के लिए योरोप से नई-नई सामग्रियां मंगवाई थी। उसे गाना और नाचना सिखाने के लिए इटली, फ्रांस, और जर्मनी के उस्ताद बुलाये गये थे। सारी रियासत में उसी का डंका बजता था। लोगों को आश्चर्य होता था कि इस रमणी में ऐसा कौन-सा गुण है, जिसने राजा साहब को इतना आसक्त और आकर्षित कर रखा है।

एक दिन रात को मैं भोजन करके लेटा ही था कि राजा साहब हने याद फर्माया। मन में एक प्रकार का संशय हुआ कि इस समय खिलाफ मामूल क्यों मेरी तलबी हुई! मैं राजा साहब के अन्तरंग मंत्रियों में से न था, इसलिए भय हुआ कि कहीं कोई विपत्ती तो नहीं आने वाली है। रियासतों में ऐसी दुर्घटनाएं अक्सर होती रहती हैं। जिसे प्रातः काल राजा साहब की बगल में बैठे हुए देखिए, उसे संध्या समय अपनी जान लेकर रियासत के बारह भागते हुए भी देखने में आया है। मुझे सन्देह हुआ, किसी ने मेरी शिकायत तो नहीं कर दी! रियासतों में निष्पक्ष रहना भी खतरनाक है। ऐसे आदमी का अगर कोई शत्रु नहीं होता तो कोई मित्र भी नहीं होता। मैंने तुरन्त कपड़े पहने और मन में तरह-तरह की दुष्कल्पनाएं करता हुआ राजा साहब की सेवा में उपस्थित हुआ। लेकिन पहली ही निगाह में मेरे सारे संशय मिट गये। राजा साहब के चेहरे पर क्रोध की जगह विषाद और नैराश्य का गहरा

रंग झलक रहा था। आंखों में एक विचित्र याचना झलक रही थी। मुझे देखते ही उन्होंने कुर्सी पर बैठने का इशारा किया, और बोले—‘क्यों जी सरदार साहब, साहब, तुमने कभी प्रेम किया है? किसी से प्रेम में अपने आपको खो बैठे हो?’

मैं समझ गया कि इस वक्त अदब और लिहाज की जरूरत नहीं। राजा साहब किसी व्यक्तिगत विषय में मुझसे सलाह करना चाहते हैं। निःसंकोच होकर बोला—‘दीनबंधु, मैं तो कभी इस जाल में नहीं फंसा।’

राजा साहब ने मेरी तरफ खासदान बढ़ाकर कहा—तुम बड़े भाग्यवान् हो, अच्छा हुआ कि तुम इस जाल में नहीं फंसे। यह आंखों को लुभाने वाला सुनहरा जाल है यह मीठा किन्तु घातक विष है, यह वह मधुर संगीत है जो कानों को तो भला मालूम होता है, पर हृदय को चूर-चूर कर देता है, यह वह मायामृग है, जिसके पीछे आदमी अपने प्राण ही नहीं, अपनी इल्लत तक खो बैठता है।

उन्होंने गिलास में शराब उंडेली और एक चुस्की लेकर बोले—जानते हो मैंने इस सरफराज के लिए कैसी-कैसी परिशानियां उठाई? मैं उसके भौंहों के एक इशारे पर अपना यह सिर उसके पैरों पर रख सकता था, यह सारी रियाशत उसके चरणों पर अर्पित कर सकता था। इन्हीं हाथों से मैंने उसका पलंग बिछाया है, उसे हुक्का भर-भरकर पिलाया है, उसके कमरे में झाड़ू लगाई है। वह पलंग से उतरती थी, तो मैं उसकी जूती सीधी करता था। इस खिदमतगुजारी में मुझे कितना आनन्द प्राप्त होता था, तुमसे बयान नहीं कर सकता। मैं उसके सामने जाकर उसके इशारों का गुलाम हो जाता था। प्रभुता और रियासत का गरूर मेरे दिल से लुप्त हो जाता था। उसकी सेवा-सुश्रूषा में मुझे तीनों लोक का राज मिल जाता था, पर इस जालिम ने हमेशा मेरी उपेक्षा की। शायद वह मुझे अपने योग्य ही नहीं समझती थी। मुझे यह अभिलाषा ही रह गई है कि वह एक बार अपनी उन मस्तानी रसीली आंखों से, एक बार उन इच्छुर भरे हुए होठों से मेरी तरफ मुस्कराती। मैंने समझा था शायद वह उपासना की ही वस्तु हैं, शायद उसे इन रहस्यों का ज्ञान

नहीं। हां, मैंने समझा था, शायद अभी अल्हड़पन उसके प्रेमोदगारों पर मुहर लगाये हुए है। मैं इस आशा से अपने व्यथित हृदय को तसकीन देता था कि कभी तो मेरी अभिलाषाएं पूरी होंगी, कभी तो उसकी सोई हुई कल्पना जागेगी।

राजा साहब एकाएक चुप हो गये। फिर कदे आदम शीशे की तरफ देखकर शान्त भाव से बोले—मैं इतना कुरूप तो नहीं हूं कि कोई रमणी मुझसे इतनी घृणा करे।

राजा साहब बहुत ही रूपवान आदमी थे। ऊंचा कद था, भरा हुआ बदन, सेव का-सा रंग, चेरे से तेज झलकता था।

मैंने निर्भीक होकर कहा—इस विषय में तो प्रकृति ने हुजूर के साथ बड़ी उदारता के साथ काम लिया है।

राजा साहब के चेहरे पर एक क्षीण उदास मुस्कराहट दौड़ गई, मगर फिर वहीं नैराश्य छा गया। बोले, सरदार साहब, मैंने इस बाजार की खूब सैर की है। सम्मोहन और वशीकरण के जितने लटके हैं, उन सबों से परिचित हूं, मगर जिन मंत्रों से मैंने अब तक हमेशा विजय पाई है, वे सब इस अवसर पर निरर्थक सिद्ध हुए। अन्त को मैंने यही निश्चय किया कि कुंआ ही अंधा है, इसमें प्यास को शांत करने की सामर्थ्य नहीं। मगर शोक, कल मुझ पर इस निष्ठुरता और उपेक्षा का रहस्य खुला गया। आह! काश, यह रहस्य कुछ दिन और मुझसे छिपा रहता, कुछ दिन और मैं इसी भ्रम, इसी अज्ञान अवस्था में पड़ा रहता।

राजा साहब का उदास चेहरा एकाएक कठोर हो गया, उन शीतर नेत्रों में जवाला-सी चमक उठी, बोले—“देखिए, ये वह पत्र है, जो कल गुप्त रूप से मेरे हाथ लगे है। मैं इस वक्त इस बात हकी जांच-पंडताल करना व्यर्थ समझता हूं कि ये पत्र मेरे पास किसने भेजे? उसे ये कहा मिले? अवश्य ही ये सरफराज की अहित कामना के इरादे से भेजे गए होंगे। मुझे तो केवल यह निश्चय करना है कि ये पत्र असली है या नकली, मुझे तो उनके असली होने में अणुमात्र भी सन्देह नहीं है। मैंने सरफराज की लिखावट देखी है,

उसकी बातचीत के अन्दाज से अनभिज्ञ नहीं हूँ। उसकी जवान पर जो वाक्य चढ़े हुए हैं, उन्हें खूब जानता हूँ। इन पत्रों में वही लिखावट है, कितनी भीषण परिस्थिति है। इधर मैं तो एक मधुर मुस्कान, एक मीठी अदा के लिए तरसता हूँ, उधर प्रेमियों के नाम प्रेमपत्र लिखे जाते हैं, वियोग-वेदना का वर्णन किया जाता है। मैंने इन पत्रों को पढ़ा है, पत्थर-सा दिल करके पढ़ा है, खून का घूंट पी-पीकर पढ़ा है, और अपनी बोटियों को नोच-नोचकर पढ़ा है! आंखों से रक्त की बूंदें निकल-निकल आई हैं। यह दगा! यह त्रिया-चरित्र!! मेरे महल में रहकर, मेरी कामनाओं को पैरों से कुचलकर, मेरी आशाओं को ठुकराकर ये क्रीड़ा होती है! मेरे लिए खारे पानी की एक बूंद भी नहीं, दूसरे पर सुधा-जल की वर्षा हो रही है! मेरे लिए एक चुटकी-भर आटा नहीं, दूसरे के लिए षटरस पदार्थ परसे जा रहे हैं। तुम अनुमान नहीं कर सकते कि इन पत्रों की पढ़कर मेरी क्या दशा हुई।”

‘पहला उद्वेग जो मेरे हृदय में उठा, वह यह था कि इसी वक्त तलवार लेकर जाऊँ और उस बेदर्द के सामने यह कटार अपनी छाती में भोंक लूँ। उसी के आंखों के सामने एडियां रगड़-रगड़ मर जाऊँ। शायद मेरे बाद मेरे प्रेम की कद्र करे, शायद मेरे खून के गर्म छीटें उसके वज्र-कठोर हृदय को द्रवित कर दें, लेकिन अन्तस्तल के न मालूम किस प्रदेश से आवाज आई— यह सरासर नादानी है तुम मर जाओगे और यह छलनी तुम्हारे प्रेमोपहारों से दामन भरे, दिल में तुम्हारी मुखता पर हंसती हुई, दूसरे ही दिन अपने प्रियतम के पस चली जाएगी।’ दोनों तुम्हारी दौलत के मजे उड़ाएंगे और तुम्हारी बंचित-दलित आत्मा को तड़पाएंगे।

‘सरदार साहब, पिश्वास मानिए, यह आवाज मुझे अपने ही हृदय के किसी स्थल से सुनाई दी। मैंने उसी वक्त तलवार निकालकर कमर से रख दी। आत्महत्या का विचार जाता रहा, और एक ही क्षण में बदले का प्रबल उद्वेग हृदय में चमक उठा। देह का एक-एक परमाणु एक आन्तरिक ज्वाला से उत्तप्त हो उठा। एक-एक रोए से आग-सी निकलने लगी। इसी वक्त जाकर उसकी कपट-लीला का अन्त कर दूँ। जिन आंखों की निगाह के लिए अपने

प्राण तक निछावर करता था, उन्हें सदैव के लिए ज्योतिहीन कर दूं। उन विषाक्त अधरों को सदैव के लिए स्वरहीन कर दूं। जिस हृदय में इतनी निष्ठुरता, इतनी कठोरता और इतना कपट भरा हुआ हो, उसे चीरकर पैरों से कुचल डालूं। खून-सा सिर पर सवार हो गया। सरफराज की सारी महत्ता, सारा माधुर्य, सारा भाव-विलास दूषित मालूम होने लगा। उस वक्त अगर मुझे मालूम हो जाता कि सरफराज की किसी ने हत्या कर डाली है, तो शायद मैं उस हत्यारों के पैरों का चुम्बन करता। अगर सुनता कि वह मरणासन्न है तो उसके दम तोड़ने का तमाशा करता, खून का दृढ़ संकल्प करके मैंने दुहरी तलवारें कमर में लगाई और उसके शयनागार में दाखिल हुआ। जिस द्वार पर जाते ही आशा और भय का संग्राम होने लगता था, वहां पहुंचकर इस वक्त मुझे वह आनन्द हुआ जो शिकारी को शिकार करने में होता है। सरदार साहब, उन भावनाओं और उदगारों का जिक्र न करूंगा, जो उस समय मेरे हृदय को आन्दोलित करने लगे। अगर वाणी में इतनी सामर्थ्य हो ीाी, तो मन को इस चर्चा से उद्विग्न नहीं करना चाहतां मैंने दबे पांव कमरे में कदम रखा। सरफराज विलासमय निद्रा में मग्न थी। मगर उसे देखकर मेरे हृदय में एक विचित्र करुणा उत्पन्न हुई। जी हाँ, वह क्रोध और उत्ताप न जाने कहाँ गायब हो गया। उसका क्या अपराध है? यह प्रश्न आकस्मिक रूप से मेरे हृदय में पैदा हुआ। उसका क्या अपराध है? अगर उसका वही अपराध है जो इस समय मैं कर रहा हूं, तो मुझे उससे बदला लेने का क्या अधिकार है? अगर वह अपने प्रियतम के लिए उतनी ही विकल, उतनी ही अधीर, उतनी ही आतुर है जितना मैं हूं, तो उसका क्या दोष है? जिस तरह मैं अपने दिल से मजबूर हूं, क्या वह भी अपने दिल से मजबूर रत्नों से मेरे प्रेम को बिसाहना चाहे, तो क्या मैं उसके प्रेम में अनुरक्त हो जाऊँगा? शायद नहीं। मैं मौका पाते ही भाग निकलूँगा। यह मेरा अन्याय है। अगर मुझमें वह गुण होते, तो उसके अज्ञात प्रियतम में है, तो उसकी तबीयत क्यों मेरी ओर आकर्षित न होती? मुझमें वे बातें नहीं हैं कि मैं उसका जीवन-सर्वस्व बन सकूं। अगर मुझे कोई कड़वी चीज अच्छी नहीं लगती, तो मैं स्वभावतः

हलवाई की दुकान की तरफ जाऊंगा, जो मिठाइयां बेचता है। सम्भव है धीरे-धीरे मेरी रुचि बदल जाय और मैं कड़वी चीजें पसन्द करने लगू। लेकिन बलात् तलवार की नोक पर कोई कड़वी चीज मेरे मुंह में नहीं डाल सकता।

इन विचारों ने मुझे पराजित कर दिया। वह सूरत, जो एक क्षण पहले मुझे काटे खाती थी उसमें पहले से शतगुणा आकर्षण था। अब तक मैंने उसको निद्रा-मग्न न देखा था, निद्रावस्था में उसका रूप और भी निष्कलंक और अनिन्द्य मालूम हुआ। जागृति में निगाह कभी आंखों के दर्शन करती, कभी अधरों के, कभी कपोलों के। इस नींद में उसका रूप अपनी सम्पूर्ण कलाओं से चमक रहा था। रूप-छटा था कि दीपक जल रहा था।

राजा साहब ने फिर प्याला मुंह से लगाया, और बोले—‘सरदार साहब, मेरा जोश ठंडा हो गया। जिससे प्रेम हो गया, उससे द्वेष नहीं हो सकता, चाहे वह हमारे साथ कितना ही अन्याय क्यों न करे। जहां प्रमिका प्रेमी के हाथों कत्ल हो, वहां समझ लीजिए कि प्रेम न था, केवल विषय-लालसा थी, मैं वहां से चला आया, लेकिन चित्त किसी तरह शान्त नहीं होता तबउसे अब तक मैंने क्रोध को जीतने की भरसक कोशिश की, मगर असफल रहा। जब तक वह शैतान जिन्दा है, मेरे पहलू में एक कांटा खटकता रहेगा, मेरी छाती पर सांप लौटता रहेगा। वहीं काला नाम फन उठाये हुए उस रत्न-राशि पर बैठा हुआ है, वहीं मेरे और सरफराज के बीच में लोहे की दीवार बना हुआ है, वहीं इस दूध की मक्खी है। उस सांप का सिर कुचलना होगा, जब तक मैं अपनी आंखों से उसकी धज्जियां बिखरते न देखूंगा। मेरी आत्मा को संतोष न होगा। परिणाम की कोई चिन्ता नहीं कुछ भी हो, मगर उस नर-पिशाच को जहन्नुम दाखिल करके दम लूंगी।’

यह कहकर राजा साहब ने मेरी ओर पूर्ण पूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—बतलाइए आप मेरी क्या मदद कर सकते हैं?

मैंने विस्मय से कहा—मैं?

राजा साहब ने मेरा उत्साह बढ़ाते हुए कहा—‘हां, आप। आप जानते हैं, मैंने इतने आदमियों को छोड़कर आपको क्यों अपना विश्वासपात्र बनया

और क्यों आपसे यह भिक्षा मांगी? यहां ऐसे आदमियों की कमी नहीं है, जो मेरा इशारा पाते ही उस दुष्ट के टुकड़े उड़ा देंगे, सरे बाजार उसके रक्त से भूमि को रंग देंगे। जी हां, एक इशारे से उसकी हड्डियों का बुरादा बना सकता हूं।, उसके नहीं मैं कीलें ठुकरा सकता हूं।, मगर मैंने सबको छोड़कर आपको छांटा, जानते हो क्यों? इसलिए कि मुझे तुम्हारे ऊपर विश्वास है, वह विश्वास जो मुझे अपने निकटतम आदमियों पर भी नहीं, मैं जानता हूं। कि तुम्हारे हृदय में यह भेद उतना ही गुप्त रहेगा, जितना मेरे। मुझे विश्वास है कि प्रलोभन अपनी चरम शक्ति का उपयोग करके भी तुम्हें नहीं डिगा सकता। पाशविक अत्याचार भी तुम्हारे अधरों को नहीं खोल सकते, तुम बेवफाई न करोगे, दगा न करोगे, इस अवसर से अनुचित लाभ न उठाओगे, जाते हो, इसका पुरस्कार क्या होगा? इसके विषय में तुम कुछ भी शंका न करो। मुझमें और चाहे कितने ही दुर्गुण हों, कृतघ्नता का दोष नहीं है। बड़े से बड़ा पुरस्कार जो मेरे अधिकार में है, वह तुम्हें दिया जाएगा। मनसब, जागीर, धन, सम्मान सब तुम्हारी इच्छानुसार दिये जाएंगे। इसका सम्पूर्ण अधिकार तुमको दिया जाएगा, कोई दखल न देगा। तुम्हारी महत्वाकांक्षा को उच्चतम शिखर तक उड़ने की आजादी होगी। तुम खुद फरमान लिखोगे और मैं उस पर आंखें बंद करके दस्तखत करूंगा; बोलो, कब जाना चाहते हो? उसका नाम और पता इस कागज पर लिखा हुआ है, इसे अपने हृदय पर अंकित कर लो, और कागज फाड़ डालो। तुम खुद समझ सकते हो कि मैंने कितना बड़ा भार तुम्हारे ऊपर रखा है। मेरी आबरू, मेरी जान, तुम्हारी मुट्ठी में हैं। मुझे विश्वास है कि तुम इस काम को सुचारु रूप से पूरा करोगे। जिन्हें अपना सहयोगी बनाओगे, वे भरोसे के आदमी होंगे। तुम्हें अधिकतम बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और धैर्य से काम लेना पड़ेगा। एक असंयत शब्द, एक क्षण का विलम्ब, जरा-सी लापरवाही मेरे और तुम्हारे दोनों के लिए प्राणघातक होगी। दुश्मन घात में बैठा हुआ है, 'कर तो डर, न कर तो डर' का मामला है। यों ही गद्दी से उतारने के मंसूबे सोचे जा रहे हैं, इस रहस्य के खुल जाने पर क्या दुर्गति होगी, इसका अनुमान तुम आप कर

सकते हो। मैं बर्मा में नजरबन्द कर दिया जाऊंगा, रियासत गैरों के हाथ में चली जाएगी और मेरा जीवन नष्ट हो जाएगा। मैं चाहता हूँ कि आज ही चले जाओ। यह इम्पीरियल बैंक का चेक बुक है, मैंने चेको पर दस्तखत कर दिए हैं, जब जितने रूपयों की जरूरत हों, ले लेना।

‘मेरा दिमाग सातवें आसमान पर जा पहुंचा। अब मुझे मालूम हुआ कि प्रलोभन में ईमान को बिगाड़ने की कितनी शक्ति होती है। मुझे जैसे कोई नशा हो गया।’ मैंने एक किताब में पढ़ा था कि अपने भाग्य-निर्माण का अवसर हर एक आदमी को मिलता है और एक ही बार। जो इस अवसर को दोनों हाथों से पकड़ लेता है, वह मर्द है, जो आगा-पीछा में पड़कर उसे छोड़ देता है, वह कायर होता है। एक को धन, यश, गौरव नसीब होता है और दूसरा खेद, लज्जा और दुर्दशा में रो-रोकर जिंदगी के दिन काटता है। फैसला करने के लिए केवल एक क्षण का समय मिलता है। वह समय कितना बहुमूल्य होता है। मेरे जीवन में यह वही अवसर था। मैंने उसे दोनों हाथों से पकड़ने का निश्चय कर लिया। सौभाग्य अपनी सर्वोत्तम सिद्धियों का थाल लिए मेरे सामने हाजिर है, वह सारी विभूतियों; जिनके लिए आदमी जीता-मरता है, मेरा स्वागत करने के लिए खड़ी है। अगर इस समय मैं। उनकी उपेक्षा करूँ, तो मुझ जैसा अभाग आदमी संसार में न होगा। माना कि बड़े जोखिम का काम है, लेकिन पुरस्कार तो देखों। दरिया में गोता लगाने ही से तो मोती मिलता है, तख्त पर बैठे हुए कायरों के लिए कोड़ियों और घोंघों के सिवा और क्या है? माना कि बेगुनाह के खून से हाथ रंगना पड़ेगा। क्या मुजायका! बलिदान से ही वरदान मिलता है। संसार समर भूमि है। यहाँ लाशों का जीना बनाकर उन्नति के शिखर पर चढ़ना पड़ता है। खून के नालों में तैरकर ही विजय-तट मिलता है। संसार का इतिहास देखों, सफल पुरुषों का चरित्र रक्त के अक्षरों में लिखा हुआ है। वीरो ने सदैव खून के दरिया में गोते लगाये हैं, खून की होलियां खेली हैं। खून का डर दुर्बलता और कम हिम्मती का चिह्न है। कर्मयोगी की दृष्टि लक्ष्य पर रहती है, मार्ग पर नहीं,

शिखर पर रहती है, मध्यवर्ती चट्टानों पर नहीं, मैंने खड़े होकर अर्ज की—
गुलाम इस खिदमत के लिए हाजिर है।’

राजा साहब ने सम्मान की दृष्टि से देखकर कहा—मुझे तुमसे यही
आशा थी। तुम्हारा दिल कहता है कि यह काम पूरा कर आओगे?

‘मुझे विश्वास है।’

‘मेरा भी यही विचार था। देखो, एक-एक क्षण का समाचार भेजते
रहना।’

‘ईश्वर ने चाहा तो हुजूर को शिकायत का कोई मौका न मिलेगा।’

‘ईश्वर का नाम न लो, ईश्वर ऐसे मौक के लिए नहीं है। ईश्वर की
मदद उस वक्त मांगो, जब अपना दिल कमजोर हो। जिसकी बांहों में शक्ति,
मन में विकल्प, बुद्धि में बल और साहस है, वह ईश्वर का आश्रय क्यों ले?
अच्छा, जाओ और जल्द सुखरू होकर लौटो, आंखें तुम्हारी तरफ लगी
रहेंगी।’

२

मैंने आत्मा की आलोचनाओं को सिर तक न उठाने दिया। उस दुष्ट को
क्या अधिकार था कि वह सरफराज से ऐसा कुत्सित सम्बंध रखे, जब
उसे मालूम था कि राजा साहब ने, उसे अपने हरम में दाखिल कर लिया है?
यह लगभग उतना ही गहिँत अपराध है, जितना किसी विवाहित स्त्री को
भगा ले जाना। सरफराज एक प्रकार से विवाहिता है, ऐसी स्त्री से पत्र-
व्यवहार करना और उस पर डोरे डालना किसी दशा में भी क्षमम नहीं हो
सकता। ऐसे संगीन अपराध की सजा भी उतनी ही संगीन होनी चाहिए।
अगर मेरे हृदय में उस वक्त तक कुछ दुर्बलता, कुछ संशय, कुछ अविश्वास
था, तो इस तर्क ने उसे दूर कर दिया। सत्य का विश्वास सत्-साहस का मंत्र
है। अब वह खून मेरी नजरों में पापमय हत्या नहीं, जायज खून था और
उससे मुंह मोड़ना लज्जाजनक कायरता।

गाड़ी के जाने में अभी दो घण्टे की देर थी। रात-भर का सफर था, लेकिन भोजन की ओर बिल्कुल रुचि न थी। मैंने सफर की तैयारी शुरू की। बाजाद से एक नकली दाढ़ी लाया, ट्रंक में दो रिवाल्वर रख लिये, फिर सोचने लगा, किसे अपने साथ ले चलूँ? यहां से किसी को ले जाना तो नीति-विरुद्ध है। फिर क्या अपने भाई साहब को तार दूँ? हां, यही उचित है। उन्हें लिख दूँ कि मुझसे बम्बई में आकर मिलें, लेकिन नहीं, भाई साहब को क्यों फंसाऊँ? कौन जाने क्या हो? बम्बई में ऐसे आदमी की क्या कमी? एक लाख रुपये का लालच दूंगा। चुटकियों में काम हो जाएगा। वहां एक से एक शातिर पड़े हैं, जो चाहें तो फरिश्तों का भी खून कर आयें। बस, इन महाशय को किसी हिकमत से किसी वेश्या के कमरे में लाया जाय और वहीं उनका काम तमाम कर दिया जाय। या समुद्र के किनारे जब वह हवा खाने निकलें, तो वहीं मारकर लाश समुद्र में डाल दी जाय।

अभी चूंकि देर थी, मैंने सोचा, लाओं सन्ध्या कर लूं। ज्योंही सन्ध्या के कमरे में कदम रखा, माता जी के तिरंगे चित्र पर नजर पड़ी। मैं मूर्ति-पूजक नहीं हूँ, धर्म की ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है, न कभी कोई व्रत रखता हूँ, लेकिन न जाने क्यों, उस चित्र को देखकर अपनी आत्मा में एक प्रकाश का अनुभव करता हूँ। उन आंखों में मुझे अब भी वही वात्सल्यमय ज्योति, वही दैवी आशीर्वात मिलता है, जिसकी बाल-स्मृति अब भी मेरे हृदय को गदगद कर देती है। वह चित्र मेरे लिए चित्र नहीं, बल्कि सजीव प्रतिमा है, जिसने मेरी सृष्टि की है और अब भी मुझे जीवन प्रदान कर रही है। उस चित्र को देखकर मैं यकायक चौंक पड़ा, जैसे कोई आदमी उस वक्त चोर के कंधे पर हाथ रख उड़े जब वह सेंध मार रहा हो। इस चित्र को रोज ही देखा करता था, दिन में कई बार उस पर निगाह पड़ती थी पर आज मेरे मन की जो दशा हुई, वह कभी न हुई थी। कितनी लज्जा और कितना क्रोध! मानों वह कह रही थी, मुझे तुझसे ऐसी आशा न थी। मैं उस तरफ ताक न सका। फौरन आंखें झुका ली। उन आंखों के सामने खड़े होने की हिम्मत मुझे न हुई। वह तसवीर की आंखें न थी, सजीव, तीव्र और ज्वालामय, हृदय में

पैठने वाली, नोकदार भाले की तरह हृदय में चुभने वाली आंखें थी। मुझे ऐसा मालूम हुआ, गिर पड़ूंगा। मैं वहीं फर्श पर बैठ गया। मेरा सिर आप ही आप झुग गया। बिल्कुल अज्ञातरूप से मानो किसी दैवी प्रेरणा से मेरे संकल्प में एक में क्रान्ति-सी हो गई। उस सत्य के पुतले, उस प्रकाश की प्रतिमा ने मेरी आत्मा को सजग कर दिया। मन-में क्या-क्या भाव उत्पन्न हुए, क्या-क्या विचार उठे, इसकी मुझे खबर नहीं। मैं इतना ही जानता हूँ कि मैं एक सम्मोहित दशा में घर से निकला, मोटर तैयार कराई और दस बजे राजा साहब की सेवा में जा पहुंचा। मेरे लिए उन्होंने विशेष रूप से ताकीद कर दी थी। जिस वक्त चाहूँ, उनसे मिल सकूँ। कोई अड़चन न पड़ी। मैं जाकर नम्र भाव से बोला—हुजूर, कुछ अर्ज करना चाहता हूँ।

राजा साहब अपने विचार में इस समस्या को सुलझाकर इस वक्त इत्मीनान की सांस ले रहे थे। मुझे देखकर उन्हें किसी नई उलझन का संदेह हुआ। तयोरियों पर बल पड़ गये, मगर एक ही क्षण में नीति ने विजय पाई, मुस्कराकर बोले—हां हां, कहिए, कोई खास बात?

मैंने निर्भीक होकर कहा—मुझे क्षमा कीजिए, मुझसे यह काम न होगा।

राजा साहब का चेहरा पीला पड़ गया, मेरी ओर विस्मृत से देखकर बोले—इसका मतलब?

‘मैं यह काम न कर सकूंगा।’

‘क्यों?’

‘मुझमें वह सामर्थ्य नहीं है।’

राजा साहब ने व्यंगपूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—शायद आत्मा जागृत हो गई, क्यों? वही बीमारी, जो कायरों और नामर्दों को हुआ करती है। अच्छी बात है, जाओ।

‘हुजूर, आप मुझसे नाराज न हों, मैं अपने में वह....।’

राजा साहब ने सिंह की भांति आग्नेय नेत्रों से देखते हुए गरजकनर कहा—मत बको, नमक...

फिर कुछ नम्र होकर बोले—तुम्हारे भाग्य में ठोकरें खाना ही लिखा है। मैंने तुम्हें वह अवसर दिया था, जिसे कोई दूसरा आदमी दैवी वरदान समझता, मगर तुमने उसकी कद्र न की। तुम्हारी तकदीर तुमसे फिरी हुई है। हमेशा गुलामी करोगे और धक्के खाओगे। तुम जैसे आदमियों के लिए गेरूए बाने है। और कमण्डल तथा पहाड़ की गुफा। इस धर्म और अधर्म की समस्या पर विचार करने के लिए उसी वैराग्य की जरूरत है। संसार मर्दों के लिए है।

मैं पछता रहा था कि मैंने पहले ही क्यों न इन्कार कर दिया।

राजा साहब ने एक क्षण के बाद फिर कहा—अब भी मौका है, फिर सोचो।

मैंने उसी निःशक तत्परता के साथ कहा—हुजूर, मैंने खूब सोचा लिया है।

राजा साहब हाठ दांतों से काटकर बोले—बेहतर है, जाओ और आज ही रात को मेरे राज्य की सीमा के बाहर निकल जाओ। शायद कल तुम्हें इसका अवसर न मिले। मैं न मालूम क्या समझकर तुम्हारी जान बखशी कर रहा हूँ। न जाने कौन मेरे हृदय में बैठा हुआ तुम्हारी रक्षा कर रहा है। मैं। इस वक्त अपने आप में नहीं हूँ, लेकिन मुझे तुम्हारी शराफत पर भरोसा है। मुझे अब भी विश्वास है कि हइस मामले को तुम दीवार के सामने भी जबान पर न लाओगे।

मैं चुपके से निकल आया और रातों-रात राज्य के बाहर पहुंच गया। मैंने उस चित्र के सिवा और कोई चीज अपने साथ न ली।

इधर सूर्य ने पूर्व की सीमा में पर्दापण किया, उधर मैं रियासत की सीमा से निकल करह अंग्रेजी इलाके में जा पहुंचा।

—‘विशाल भारत’, दिसम्बर, १९२०

दूसरी शादी

जब मैं अपने चार साल के लड़के रामसरूप को गौर से देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि उसमें वह भोलापन और आकर्षण नहीं रहा जो कि दो साल पहले था। वह मुझे अपने सुख और रंजीदा आंखों से घूरता हुआ नजर आता है। उसकी इस हालत को देखकर मेरा कलेजा कांप उठता है और मुझे वह वादा याद आता है जो मैंने दो साल हुए उसकी मां के साथ, जबकि वह मृत्यु-शय्या पर थी, किया था। आदमी इतना स्वार्थी और अपनी इन्द्रियों का इतना गुलाम है कि अपना फर्ज किसी-किसी वक्त ही महसूस करता है। उस दिन जबकि डाक्टर नाउम्मीद हो चुके थे, उसने रोते हुए मुझसे पूछा था, क्या तुम दूसरी शादी कर लोगे? जरूर कर लेना। फिर चौंककर कहा, मेरे राम का क्या बनेगा? उसका खयाल रखना, अगर हो सके।

मैंने कहा—हां-हां, मैं वादा करता हूँ कि मैं कभी दूसरी शादी न करूंगा और रामसरूप, तुम उसकी फिक्र न करो, क्या तुम अच्छी न होगी? उसने मेरी तरफ हाथ फेंक दिया, जैसे कहा, लो अलविदा। दो मिनट बाद दुनिया मेरी आंखों में अंधेरी हो गई। रामसरूप बे-मां का हो गया। दो-तीन दिन उसको कलेजे से चिमटाये रखा। आखिर छुट्टी पूरी होने पर उसको पिता जी के सुपुर्द करके मैं फिर अपनी इयूटी पर चला गया।

दो-तीन महीने दिल बहुत उदास रहा। नौकरी की, क्योंकि उसके सिवाय चारा न था। दिल में कई मंसूबे बांधता रहा। दो-तीन साल नौकरी करके रुपया लेकर दुनिया ाकी सैर को निकल जाऊंगा, यह करूंगा, वह करूंगा, अब कहीं दिल नहीं लगता।

घर से खत बराबर आ रहे थे कि फलां-फलां जबह से नाते आ रहे हैं, आदमी बहुत अच्छे हैं, लड़की अकल की तेज और खूबसूरत है, फिर ऐसी जगह नहीं मिलेगी। आखिर करना है ही, कर लो। हर बात में मेरी राय पूछी जाती थी।

लेकिन मैं बराबर इनकार किये जाता था। मैं हैरान था कि इंसान किस तरह दूसरी शादी पर आमादा हो सकता है! जबकि उसकी सुन्दर और पतिप्राणा स्त्री को, जो कि उसके लिए स्वयं की एक भेंट थी, भगवान ने एक बार छीन लिया।

वक्त बीतता गया। फिर यार-दोस्तों के तकाजे शुरू हो गये। कहने लगे, जाने भी दो, औरत पैरह की जूती है, जब एक फट गई, दूसरी बदल ली। स्त्री का कितना भयानक अपमान है, यह कहकर मैं उनका मुंह बन्द कर दिया करता था। जब हमारी सोसायटी जिसका इतना बड़ा नाम है, हिन्दू विधवा को दुबारा शादी कर लेने की इजाजत नहीं देती तो मुझको शोभा नहीं देता कि मैं दुबारा एक कुंवारी से शादी कर लूं जब तक यह कलंक हमारी कौम से दूर नहीं हो जाता, मैं हर्गिज, कुंवारी तो दूर की बात है, किसी विधवा से भी ब्याह न करूंगा। खयाल आया, चलो नौकरी छोड़कर इसी बात का प्रचार करें। लेकिन मंच पर अपने दिल के खयालात जबान पर कैसे लाऊंगा। भावनाओं को व्यावहारिक रूप देने में, चरित्र मजबूत बनाने में, जो कहना उसे करके दिखाने में, हममें कितनी कमी हैं, यह मुझे उस वक्त मालूम हुआ जबकि छः माह बाद मैंने एक कुंवारी लड़की से शादी कर ली।

घर के लोग खुश हो रहे थे कि चलें किसी तरह माना। उधर उस दिन मेरी बिरादरी के दो-तीन पढ़े-लिखे रिश्तेदारों ने डांट बताई—तुम जो कहा करते थे मैं बेवा से ही शादी करूंगा, लम्बा-चौड़ा व्याख्यान दिया करते थे, अब वह तमाम बातें किधर गई? तुमने तो एक उदाहरण भी न रखा जिस पर हम चल सकतें मुझ पर जैसे घड़ों पानी फिर गया। आंखें खुल गईं। जवानी के जोश में क्या कर गुजरा। पुरानी भावनाएं फिर उभर आईं और आज भी मैं उन्हीं विचारों में डूबा हुआ हूं।

सोचा था—नौकर लड़के को नहीं सम्हाल सकता, औरतें ही इस काम के लिए ठीक हैं। ब्याह कर लेने पर, जब औरत घर में आयेगी तो रामस्वरूप को अपने पास बाहर रख सकूंगा और उसका खासा खयाल रखूंगा लेकिन वह सब कुछ गलत अक्षर की तरह मिट गया। रामस्वरूप को आज फिर

वापस गांव पिता जी के पास भेजने पर मजबूर हूँ। क्यों, यह किसी से छिपा नहीं। औरत का अपने सौतेले बेटे से प्यार करना एक असम्भव बात है। ब्याह के मौके पर सूना था लड़की बड़ी नेक हैं, स्वजनों का खास ख्याल रखेगी और अपने बेटे की तरह समझेगी लेकिन सब झूठ। औरत चाहे कितनी नेकदिल हो वह कभी अपने सौतेले बच्चे से प्यार नहीं कर सकती।

और यह हार्दिक दुख वह वादा तोड़ने की सजा है जो कि मैंने एक नेक बीबी से उसके आखिरी वक्त में किया था।

—‘चन्दर’, सितम्बर, १९३१

सौत

जब रजिया के दो-तीन बच्चे होकर मर गये और उम्र ढल चली, तो रामू का प्रेम उससे कुछ कम होने लगा और दूसरे व्याह की धुन सवार हुई। आये दिन रजिया से बकझक होने लगी। रामू एक-न-एक बहाना खोजकर रजिया पर बिगड़ता और उसे मारता। और अन्त को वह नई स्त्री ले ही आया। इसका नाम था दासी। चम्पई रंग था, बड़ी-बड़ी आंखें, जवानी की उम्र। पीली, कुंशागी रजिया भला इस नवयौवना के सामने क्या जांचती! फिर भी वह जाते हुए स्वामित्व को, जितने दिन हो सके अपने अधिकार में रखना चाहती थी। तिगरते हुए छप्पर को थूनियों से सम्हालने की चेष्टा कर रही थी। इस घर को उसने मर-मरकर बनाया है। उसे सहज ही में नहीं छोड़ सकती। वह इतनी बेसमझ नहीं है कि घर छोड़कर ची जाय और दासी राज करे।

२

एक दिन रजिया ने रामू से कहा—मेरे पास साड़ी नहीं है, जाकर ला दो। रामू उसके एक दिन पहले दासी के लिए अच्छी-सी चुंदरी लाया था। रजिया की मांग सुनकर बोला—मेरे पास अभी रुपया नहीं था।

रजिया को साड़ी की उतनी चाह न थी जितनी रामू और दसिया के आनन्द में विध्न डालने की। बोली—रूपये नहीं थे, तो कल अपनी चहेती के लिए चुंदरी क्यों लाये? चुंदरी के बदले उसी दाम में दो साड़ियां लाते, तो एक मेरे काम न आ जाती?

रामू ने स्वेच्छा भाव से कहा—मेरी इच्छा, जो चाहूंगा, करूंगा, तू बोलने वाली कौन है? अभी उसके खाने-खेलने के दिन हैं। तू चाहती हैं, उसे अभी से नोन-तेल की चिन्ता में डाल दूं। यह मुझसे न होगा। तुझे ओढ़ने-पहनने की साध है तो काम कर, भगवान ने क्या हाथ-पैर नहीं दिये। पहले

तो घड़ी रात उठकर काम धंधे में लग जाती थी। अब उसकी डाह में पहर दिन तक पड़ी रहती है। तो रूपये क्या आकाश से गिरेंगे? मैं तेरे लिए अपनी जान थोड़े ही दे दूंगा।

रजिया ने कहा—तो क्या मैं उसकी लौंडी हूँ कि वह रानी की तरह पड़ी रहे और मैं घर का सारा काम करती रहूँ? इतने दिनों छाती फाड़कर काम किया, उसका यह फल मिला, तो अब मेरी बला काम करने आती है।

‘मैं जैसे रखूंगा, वैसे ही तुझे रहना पड़ेगा।’

‘मेरी इच्छा होगी रहूंगी, नहीं अलग हो जाऊंगी।’

‘जो तेरी इच्छा हो, कर, मेरा गला छोड़।’

‘अच्छी बात है। आज से तेरा गला छोड़ती हूँ। समझ लूंगी विधवा हो गई।’

3

रामु दिल में इतना तो समझता था कि यह गृहस्थी रजिया की जोड़ी हुई हैं, चाहे उसके रूप में उसके लोचन-विलास के लिए आकर्षण न हो। सम्भव था, कुछ देर के बाद वह जाकर रजिया को मना लेता, पर दासी भी कूटनीति में कुशल थी। उसने गम्व लोहे पर चोटें जमाना शुरू कीं। बोली—आज देवी की किस बात पर बिगड़ रही थी?

रामु ने उदास मन से कहा—तेरी चुंदरी के पीछे रजिया महाभारत मचाये हुए है। अब कहती है, अलग रहूंगी। मैंने कह दिया, तेरी जरे इच्छा हो कर।

दसिया ने आँखें मटकाकर कहा—यह सब नखरे हैं कि आकर हाथ-पांव जोड़े, मनावन करें, और कुछ नहीं। तुम चुपचाप बैठे रहो। दो-चार दिन में आप ही गरमी उतर जायेगी। तुम कुछ बोलना नहीं, उसका मिजाज और आसमान पर चढ़ जायगा।

रामू ने गम्भीर भाव से कहा—दासी, तुम जानती हो, वह कितनी घमण्डिन है। वह मुंह से जो बात कहती है, उसे करके छोड़ती है।

रजिया को भी रामू से ऐसी कृतधनता की आशा न थी। वह जब पहले की-सी सुन्दर नहीं, इसलिए रामू को अब उससे प्रेम नहीं है। पुरुष चरित्र में यह कोई असाधारण बात न थी, लेकिन रामू उससे अलग रहेगा, इसका उसे विश्वास आता था। यह घर उसी ने पैसा-पैसा जोड़ेकर बनवाया। गृहस्थी भी उसी की जोड़ी हुई है। अनाज का लेन-देन उसी ने शुरू किया। इस घर में आकर उसने कौन-कौन से कष्ट नहीं झेले, इसीलिए तो कि पौरुख थक जाने पर एक टुकड़ा चैन से खायगी और पड़ी रहेगी, और आज वह इतनी निर्दयता से दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दी गई! रामू ने इतना भी नहीं कहा—तू अलग नहीं रहने पायेगी। मैं या खुद मर जाऊंगा या तुझे मार डालूंगा, पर तुझे अलग न होने दूंगा। तुझसे मेरा ब्याह हुआ है। हंसी-ठट्ठा नहीं है। तो जब रामू को उसकी परवाह नहीं है, तो वह रामू को क्यों परवाह करे। क्या सभी स्त्रियों के पुरुष बैठे होते हैं। सभी के मां-बाप, बेटे-पोते होते हैं। आज उसके लड़के जीते होते, तो मजाल थी कि यह नई स्त्री लाते, और मेरी यह दुर्गति करते? इस निदर्श को मेरे ऊपर इतनी भी दया न आई?

नारी-हृदय की सारी परवशता इस अत्याचार से विद्रोह करने लगी। वही आग जो मोटी लकड़ी को स्पर्श भी नहीं कर सकती, फूस को जलाकर भस्म कर देती है।

४

दूसरे दिन रजिया एक दूसरे गांव में चली गई। उसने अपने साथ कुछ न लिया। जो साड़ी उसकी देह पर थी, वही उसकी सारी सम्पत्ति थी। विधाता ने उसके बालकों को पहले ही छीन लिया था! आज घर भी छीन लिया!

रामू उस समय दासी के साथ बैठा हुआ आमोद-विनोद कर रहा था। रजिया को जाते देखकर शायद वह समझ न सका कि वह चली जा रही है।

रजिया ने यही समझा। इस तरह तोरों की भांति वह जाना भी न चाहती थी। वह दासी को उसके पति को और सारे गांव को दिखा देना चाहती थी कि वह इस घर से धेले की भी चीज नहीं ले जा रही है। गांव वालों की दृष्टि में रामू का अपमान करना ही उसका लक्ष्य था। उसके चुपचाप चले जाने से तो कुछ भी न होगा। रामू उलटा सबसे कहेगा, रजिया घर की सारी सम्पदा उठा ले गई।

उसने रामू को पुकारकर कहा—सम्हालो अपना घर। मैं जाती हूँ। तुम्हारे घर की कोई भी चीज अपने साथ नहीं ले जाती।

रामू एक क्षण के लिए कर्तव्य-भ्रष्ट हो गया। क्या कहे, उसकी समझ में नहीं आया। उसे आशा न थी कि वह यों जायगी। उसने सोचा था, जब वह घर ढोकर ले जाने लगेगी, तब वह गांव वालों को दिखाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त करेगा। अब क्या करे।

दसिया बोली—जाकर गांव में ढिंढोरा पीट आओ। यहां किसी का डर नहीं है। तु अपने घर से ले ही क्या आई थीं, जो कुछ लेकर जाओगी। रजिया ने उसके मुंह न लगकर रामू ही से कहा—सनुते हो, अपनी चहेती की बातें। फिर भी मुंह नहीं खुलता। मैं तो जाती हूँ, लेकिन दस्सो रानी, तुम भी बहुत दिन राज न करोगी। ईश्वर के दरवार में अन्याय नहीं फलता। वह बड़े-बड़े घमण्डियों को घमण्ड चूर कर देते हैं।

दसिया ठट्ठा मारकर हंसी, पर रामू ने सिर झुका लिया। रजिया चली गई।

५

रजिया जिस नये गांव में आई थी, वह रामू के गांव से मिला ही हुआ था, अतएव यहां के लोग उससे परिचित हैं। वह कैसी कुशल गृहिणी है, कैसी मेहनती, कैसी बात की सच्ची, यह यहां किसी से छिपा न था। रजिया को मजूरी मिलने में कोई बाधा न हुई। जो एक लेकर दो का काम करे, उसे काम की क्या कमी?

तीन साल एक रजिया ने कैसे काटे, कैसे एक नई गृहस्थी बनाई, कैसे खेती शुरू की, इसका बयान करने बैठें, तो पोथी हो जाय। संचय के जितने मंत्र हैं, जितने साधन हैं, वे रजिया को खूब मालूम थे। फिर अब उसे लाग हो गई थी और लाग में आदमी की शक्ति का वारापार नहीं रहता। गांव वाले उसका परिश्रम देखकर दाँतों उंगली दबाते थे। वह रामू को दिखा देना चाहती है—मैं तुमसे अलग होकर भी आराम से रह सकती हूँ। वह अब पराधीन नारी नहीं है। अपनी कमाई खाती है।

रजिया के पास बैलों की एक अच्छी जोड़ी है। रजिया उन्हें केवल खली-भूसी देकर नहीं रह जाती, रोज दो-दो रोटियाँ भी खिलाती है। फिर उन्हें घंटों सहलाती। कभी-कभी उनके कंधों पर सिर रखकर रोती है और कहती है, अब बेटे हो तो, पति हो तो तुम्हीं हो। मेरी जाल अब तुम्हारे ही साथ है। दोनों बैल शायद रजिया की भाषा और भाव समझते हैं। वे मनुष्य नहीं, बैल हैं। दोनों सिर नीचा करके रजिया का हाथ चाटकर उसे आश्वासन देते हैं। वे उसे देखते ही कितने प्रेम से उसकी ओर ताकते लगते हैं, कितने हर्ष से कंधा झुलाकर पर जुवा रखवाते हैं और कैसा जी तोड़ काम करते हैं, यह वे लोग समझ सकते हैं, जिन्होंने बैलों की सेवा की है और उनके हृदय को अपनाया है।

रजिया इस गांव की चौधराइन है। उसकी बुद्धि जो पहिले नित्य आधार खोजती रहती थी और स्वच्छन्द रूप से अपना विकास न कर सकती थी, अब छाया से निकलकर प्रौढ़ और उन्नत हो गई है।

एक दिन रजिया घर लौटी, तो एक आदमी ने कहा—तुमने नहीं सुना, चौधराइन, रामू तो बहुत बीमार है। सुना दस लंघन हो गये हैं।

रजिया ने उदासीनता से कहा—जूड़ी है क्या?

‘जूड़ी, नहीं, कोई दूसरा रोग है। बाहर खाट पर पड़ा था। मैंने पूछा, कैसा जी है रामू? तो रोने लगा। बुरा हाल है। घर में एक पैसा भी नहीं कि दवादारु करें। दसिया के एक लड़का हुआ है। वह तो पहले भी काम-धन्धा न

करती थी और अब तो लड़कोरी है, कैसे काम करने आय। सारी मार रामू के सिर जाती है। फिर कहने चाहिए, नई दुलहिन यों कैसे रहे।’

रजिया ने घर में जाते हुए कहा—जो जैसा करेगा, आप भोगेगा।

लेकिन अन्दर उसका जी न लगा। वह एक क्षण में फिर बाहर आई। शायद उस आदमी से कुछ पूछना चाहती थी और इस अन्दाज से पूछना चाहती थी, मानो उसे कुछद परवाह नहीं है।

पर वह आदमी चला गया था। रजिया ने पूरव-पच्छिम जा-जाकर देखा। वह कहीं न मिला। तब रजिया द्वार के चौखट पर बैठ गई। इसे वे शब्द याद आये, जो उसने तीन साल पहले रामू के घर से चलते समय कहे थे। उस वक्त जलन में उसने वह शाप दिया था। अब वह जलन न थी। समय ने उसे बहुत कुछ शान्त कर दिया था। रामू और दासी की हीनावस्था अब ईर्ष्या के योग्य नहीं, दया के योग्य थी।

उसने सोचा, रामू को दस लंघन हो गये हैं, तो अवश्य ही उसकी दशा अच्छी न होगी। कुछ ऐसा मोटा-ताजा तो पहले भी न था, दस लंघन ने तो बिल्कुल ही घुला डाला होगा। फिर इधर खेती-बारी में भी टोटा ही रहा। खाने-पीने को भी ठीक-ठीक न मिला होगा...

पड़ोसी की एक स्त्री ने आग लेने के बहाने आकर पूछा—सुना, रामू बहुत बीमार हैं जो जैसी करेगा, वैसा पायेगा। तुम्हें इतनी बेदर्दी से निकाला कि कोई अपने बैरी को भी न निकालेगा।

रजिया ने टोका—नहीं दीदी, ऐसी बात न थी। वे तो बेचारे कुछ बोले ही नहीं। मैं चली तो सिर झुका लिया। दसिया के कहने में आकर वह चाहे जो कुछ कर बैठे हों, यों मुझे कभी कुछ नहीं कहा। किसी की बुराई क्यों करूं। फिर कौन मर्द ऐसा है जो औरजों के बस नहीं हो जाता। दसिया के कारण उनकी यह दशा हुई है।

पड़ोसिन ने आग न मांग, मुंह फेरकर चली गई।

रजिया ने कलसा और रस्सी उठाई और कुएं पर पानी खींचने गई। बैलों को सानी-पानी देने की बेला आ गई थी, पर उसकी आंखें उस रास्ते की

ओर लगी हुई थीं, जो मलसी (रामू का गांव) को जाता था। कोई उसे बुलाने अवश्य आ रहा होगा। नहीं, बिना बुलाये वह कैसे जा सकती है। लोग कहेंगे, आखिर दौड़ी आई न!

मगर रामू तो अचेत पड़ा होगा। दस लंघन थोड़े नहीं होते। उसकी देह में था ही क्या। फिर उसे कौन बुलायेगा? दसिया को क्या गरज पड़ी है। कोई दूसरा घर कर लेगी। जवान है। सौ गाहक निकल आवेंगे। अच्छा वह आ तो रहा है। हां, आ रहा है। कुछ घबराया-सा जान पड़ता है। कौन आदमी है, इसे तो कभी मलसी में नहीं देखा, मगर उस वक्त से मलसी कभी गई भी तो नहीं। दो-चार नये आदमी आकर बसे ही होंगे।

बटोही चुपचाप कुए के पास से निकला। रजिया ने कलसा जगत पर रख दिया और उसके पास जाकर बोली—रामू महतो ने भेजा है तुम्हें? अच्छा तो चलो घर, मैं तुम्हारे साथ चलती हूं। नहीं, अभी मुझे कुछ देर है, बैलों को सानी-पानी देना है, दिया-बत्ती करनी है। तुम्हें रुपये दे दूं, जाकर दसिया को दे देना। कह देना, कोई काम हो तो बुला भेजें।

बटोही रामू को क्या जाने। किसी दूसरे गांव का रहने वाला था। पहले तो चकराया, फिर समझ गया। चुपके से रजिया के साथ चला गया और रुपये लेकर लम्बा हुआ। चलते-चलते रजिया ने पूछा—अब क्या हाल है उनका?

बटोही ने अटकल से कहा—अब तो कुछ सम्हल रहे हैं।

‘दसिया बहुत रो-धो तो नहीं रही है?’

‘रोती तो नहीं थी।’

‘वह क्यों रोयेगी। मालूम होगा पीछे।’

बटोही चला गया, तो रजिया ने बैलों को सानी-पानी किया, पर मन रामू ही की ओर लगा हुआ था। स्नेह-स्मृतियां छोटी-छोटी तारिकाओं की भांति मन में उदित होती जाती थीं। एक बार जब वह बीमार पड़ी थी, वह बात याद आई। दस साल हो गए। वह कैसे रात-दिन उसके सिरहाने बैठा रहता था। खाना-पीना तक भूल गया था। उसके मन में आया क्यों न

चलकर देख ही आवे। कोई क्या कहेगा? किसका मुंह है जो कुछ कहे। चोरी करने नहीं जा रही हूं। उस अदमी के पास जा रही हूं, जिसके साथ पन्द्रह-बीस साल ही हूं। दसिया नाक सिकोड़ेगी। मुझे उससे क्या मतलब।

रजिया ने किवाड़ बन्द किए, घर मजूर को सहेजा, और रामू को देखने चली, कांपती, झिझकती, क्षमा का दान लिये हुए।

६

रामू को थोड़े ही दिनों में मालूम हो गया था कि उसके घर की आत्मा निकल गई, और वह चाहे कितना जोर करे, कितना ही सिर खपाये, उसमें स्फूर्ति नहीं आती। दासी सुन्दरी थी, शौकीन थी और फूहड़ थी। जब पहला नशा उतरा, तो ठांय-ठांय शुरू हुई। खेती की उपज कम होने लगी, और जो होती भी थी, वह ऊटपटांग खर्च होती थी। ऋण लेना पड़ता था। इसी चिन्ता और शोक में उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। शुरू में कुछ परवाह न की। परवाह करके ही क्या करता। घर में पैसे न थे। अताइयों की चिकित्सा ने बीमारी की जड़ और मजबूत कर दी और आज दस-बारह दिन से उसका दाना-पानी छूट गया था। मौत के इन्तजार में खाट पर पड़ा कराह रहा था। और अब वह दशा हो गई थी जब हम भविष्य से निश्चिन्त होकर अतीत में विश्राम करते हैं, जैसे कोई गाड़ीद आगे का रास्ता बन्द पाकर पीछे लौटे। रजिया को याद करके वह बार-बार रोता और दासी को कोसता—तेरे ही कारण मैंने उसे घर से निकाला। वह क्या गई, लक्ष्मी चली गई। मैं जानता हूं, अब भी बुलाऊं तो दौड़ी आयेगी, लेकिन बुलाऊं किस मुंह से! एक बार वह आ जाती और उससे अपने अपराध क्षमा करा लेती, फिर मैं खुशी से मरता। और लालसा नहीं है।

सहसा रजिया ने आकर उसके माथे पर हाथ रखते हुए पूछा—कैसा जी है तुम्हारा? मुझ तो आज हाल मिला।

रामू ने सजल नेत्रों से उसे देखा, पर कुछ कह न सका। दोनों हाथ जोड़कर उसे प्रणाम किया, पर हाथ जुड़े ही रह गये, और आंख उलट गई।

७

लाश घर में पड़ी थी। रजिया रोती थी, दसिया चिन्तित थी। घर में रुपये का नाम नहीं। लकड़ी तो चाहिए ही, उठाने वाले भी जलपान करेंगे ही, कफन के बगैर लाश उठेगी कैसे। दस से कम का खर्च न था। यहां घर में दस पैसे भी नहीं। डर रही थी कि आज गहन आफत आई। ऐसी कीमती भारी गहने ही कौन थे। किसान की बिसात ही क्या, दो-तीन नग बेचने से दस मिल जाएंगे। मगर और हो ही क्या सकता है। उसने चौधरी के लड़के को बुलाकर कहा—देवर जी, यह बेड़ा कैसे पार लागे! गांव में कोई धेले का भी विश्वास करने वाला नहीं। मेरे गहने हैं। चौधरी से कहो, इन्हें गिरों रखकर आज का काम चलाएं, फिर भगवान् मालिक है।

‘रजिया से क्यों नहीं मांग लेती।’

सहसा रजिया आंखें पोंछती हुई आ निकली। कान में भनक पड़ी। पूछा—क्या है जोखूं, क्या सलाह कर रहे हो? अब मिट्टी उठाओगे कि सलाह की बेला है?

‘हां, उसी का सरंजाम कर रहा हूं।’

‘रुपये-पैसे तो यहां होंगे नहीं। बीमारी में खर्च हो गए होंगे। इस बेचारी को तो बीच मंझधार में लाकर छोड़ दिया। तुम लपक कर उस घर चले जाओ भैया! कौन दूर है, कुंजी लेते जाओ। मंजूर से कहना, भंडार से पचास रुपये निकाल दे। कहना, ऊपर की पटरी पर रखे हैं।’

वह तो कुंजी लेकर उधर गया, इधर दसिया राजो के पैर पकड़ कर रोने लगी। बहनापे के ये शब्द उसके हृदय में पैठ गए। उसने देखा, रजिया में कितनी दया, कितनी क्षमा है।

रजिया ने उसे छाती से लगाकर कहा—क्यों रोती है बहन? वह चला गया। मैं तो हूँ। किसी बात की चिन्ता न कर। इसी घर में हम और तुम दोनों उसके नाम पर बैठेंगी। मैं वहाँ भी देखूंगी यहाँ भी देखूंगी। धाप-भर की बात ही क्या? कोई तुमसे गहने-पाते मांगे तो मत देना।

दसिया का जी होता था कि सिर पटक कर मर जाय। इसे उसने कितना जलाया, कितना रुलाया और घर से निकाल कर छोड़ा।

रजिया ने पूछा—जिस-जिस के रुपये हों, सूरत करके मुझे बता देना। मैं झगड़ा नहीं रखना चाहती। बच्चा दुबला क्यों हो रहा है?

दसिया बोली—मेरे दूध होता ही नहीं। गाय जो तुम छोड़ गई थी, वह मर गई। दूध नहीं पाता।

‘राम-राम! बेचारा मुरझा गया। मैं कल ही गाय लाऊंगी। सभी गृहस्थी उठा लाऊंगी। वहाँ क्या रक्खा है।’

लाश से उठी। रजिया उसके साथ गई। दाहकर्म किया। भोज हुआ। कोई दो सौ रुपये खर्च हो गए। किसी से मांगने न पड़े।

दसिया के जौहर भी इस त्याग की आंच में निकल आये। विलासिनी सेवा की मूर्ति बन गई।

८

आज रामू को मरे सात साल हुए हैं। रजिया घर सम्भाले हुए है। दसिया को वह सौत नहीं, बेटी समझती है। पहले उसे पहनाकर तब आप पहनती हैं उसे खिलाकर आप खाती है। जोखूँ पढ़ने जाता है। उसकी सगाई की बातचीत पक्की हो गई। इस जाति में बचपन में ही ब्याह हो जाता है। दसिया ने कहा—बहन गहने बनवा कर क्या करोगी। मेरे गहने तो धरे ही हैं।

रजिया ने कहा—नहीं री, उसके लिए नये गहने बनवाऊंगी। उभी तो मेरा हाथ चलता है जब थक जाऊं, तो जो चाहे करना। तेरे अभी पहनने-ओढ़ने के दिन हैं, तू अपने गहने रहने दे।

नाइन ठकुरसोहाती करके बोली—आज जोखूँ के बाप होते, तो कुछ और ही बात होती।

रजिया ने कहा—वे नहीं हैं, तो मैं तो हूँ। वे जितना करते, मैं उसका दूगा करूंगी। जब मैं मर जाऊँ, तब कहना जोखूँ का बाप नहीं है!

ब्याह के दिन दसिया को रोते देखकर रजिया ने कहा—बहू, तुम क्यों रोती हो? अभी तो मैं जीती हूँ। घर तुम्हारा है जैसे चाहो रहो। मुझे एक रोटी दे दो, बस। और मुझे क्या करना है। मेरा आदमी मर गया। तुम्हारा तो अभी जीता है।

दसिया ने उसकी गोद में सिर रख दिया और खूब रोई—जीजी, तुम मेरी माता हो। तुम न होतीं, तो मैं किसके द्वार पर खड़ी होती। घर में तो चूहे लोटते थे। उनके राज में मुझे दुख ही दुख उठाने पड़े। सोहाग का सुख तो मुझे तुम्हारे राज में मिला। मैं दुख से नहीं रोती, रोती हूँ भगवान् की दया पर कि कहां मैं और कहां यह खुशहाली!

रजिया मुस्करा कर रो दी।

--‘विशाल भारत’, दिसम्बर, १९३९